कुछ दिन और

(उपन्यास)

मंज़ूर एहतेशाम

अक्षर प्रकाशन प्रा० लि०

शानी के लिए
जिनके बिना इस
रचना की कल्पना
भी अधूरी थी

एक

लगा था, उसी रात सब कुछ तय हो गया था।

राजू का इन्तज़ार करते हुए मैं बेड-रूम में नन्हें अंशुल के पास बैठी रही थी और रह-रह कर मुझे लगा था जैसे हमारी तरफ़ का घर, पूरे मकान से इस तरह कट गया है जैसे फैले हुए पानी के बीच खुश्की का कोई टुकड़ा विद्रोह करता हुआ निकल आये। अंशुल को मैं धीरे-धीरे थपकियाँ देती रही थी, सुलाने की कोशिश करती रही थी और आज तक जो कुछ हुआ, उसे सोचती रही थी।—लेकिन हमारे घर के अलग हो जाने में विद्रोह कहां था ? हम तो अनचाहे ही फैले पानी-से अलग हो गये थे। समुद्र ने खुद हमें उगल दिया था।

"तुम समझती हो, राजू पागल है ?" उस दिन लगभग साल भर पहले, राजू की मम्मी ने मुझे कोसते-से स्वर में कहा—"हमने तो उसे शादी से पहले भी देखा है। हमें मालूम है, वह क्या है। औरत अपने मर्द को बना न सके, तो कम से कम बरबाद तो न करे।"

यह तब की बात थी जब राजू की मम्मी और मेरे बीच संबंध बिलकुल ही खत्म न हो पाये थे। उस सब के बाद भी, जो तब तक हुआ था मैंने उनसे बिलकुल इसी प्रकार संबंध बनाये रखे थे जैसे औसत सास-बहुओं के होते हैं। इसका एक कारण यह भी था कि हम लोग धीरे-धीरे आपस में बहुत कम मिलने लगे थे और इस तरह किसी भी विस्फोट को बचाये हुए थे। पिछले चार वर्ष से उनकी अधिकांश बातें सुनकर मैं चुप हो जाती थी लेकिन उस दिन जाने क्या हुआ था।

"यह बहुत अच्छा है।" मेरे मुंह से आप ही आप निकल गया था—"जब तक कमाते रहे तो मां के पूत, और पांव लड़खड़ाये तो पत्नी का पति !" अपने भीतर इकट्ठी नफ़रत और गुस्से को मैं काबू में न रख पायी थी—"खुद मैंने आपको उनसे कुछ कहने या करने से कब रोका है ? रहा पागलपन तो वह तो··!"

मैंने किसी तरह अपने को रोका था।

"तुम उसे कुछ सुनने का मौका दो तब ना।" मम्मी का कहा अन्तिम वाक्य था और आगे बिना कुछ सुने वह उठकर चली गयी थीं।

उन दिनों राजू का चलता हुआ काम, बैठना शुरू ही हुआ था और इसका पूरा पता भी राजू को नहीं चल पाया था। या, जैसा राजू की मम्मी कहती थीं, मैंने उन्हें यह सब जानने की फुर्सत नहीं दी थी। राजू के स्वर्गीय पिता के समय का कोई मुनीम था जो आकर मम्मी को सब-कुछ बताता रहता था।

और उसी दिन मकान के इस हिस्से, जिसमें मैं और राजू रहते हैं और उस हिस्से के बीच जिसमें मम्मी, जीजी-जीजा रहते हैं वह दीवार पूरी उठ गयी थी जिसकी नींव बहुत पहले कभी राजू और मेरे विवाह पर ही रखी जा चुकी थी। वह दरवाज़ा जो मकान के दोनों हिस्सों को जोड़ता था पहले तो बन्द रहने लगा था, और अन्त में मैंने खुद ही उसमें ताला डाल दिया था।

और राजू से मेरे विवाह की वह पहली रात··

हनीमून सूट···शहर का सबसे बड़ा होटल···मैं और राजू।

"क्या सोच रहे हैं ?"···मैं उस लम्बी फैली कुर्सी के पीछे जाकर खड़ी हो गयी थी, जहां बिस्तर पर मुझे अकेला छोड़ कर राजू जा बैठे थे। उस लम्बी-सी आराम कुर्सी में फैल कर राजू का अस्तित्व सीमित-सा लग रहा था। हल्की रोशनी में मैं देर से राजू को सिगरेट के धुएं के छल्ले बनाते देख रही थी। घण्टे भर से राजू कुछ भी नहीं बोले थे।

मुझे अपने पीछे महसूस कर वह एकदम हट खड़े हुए थे, दूसरी सिगरेट जलाई थी, और सामने का पर्दा खींच दिया था। पर्दा खींचते ही दूर तक फैला तालाब और आकाश में गुमसुम सितारे हमारे बिलकुल पास आ

गये थे।

"राजू···" मैंने उनके कंधे पर अपना सिर रख दिया था।

राजू मुझे धक्का देकर एकदम अलग हो गये थे—"कुंवारी !" उन्होंने फुफकारते-से स्वर में कहा था—"फिर शादी ब्याह का ढकोसला रचाने की क्या जरूरत थी !" और राजू अपना सिर पकड़कर बैठ गये थे—"तुम कल ही अपने घर वापस जाओ। मैं नहीं रह सकता···और···! मैं सोच भी नहीं सकता था कि तुम ऐसी निकलोगी। कौन था वह ? बताओ, कौन था ?"

एकदम मेरे पास सोता अंशुल चौंक गया। बाहर सड़क पर शायद दो कुत्ते एक-दूसरे से लड़ पड़े थे। मैं अंशुल को थपकी देकर सुलाने की कोशिश करने लगी थी। अभी अगर जाग गया तो डैडी-डैडी कर के आसमान सर पर उठा लेगा। मैं लोरी गुनगुनाने लगी थी—हर बच्चे और उसकी मां के बीच सपनों की दुनिया की ओर ले जाता वह पुल···

शादी के अगले दिन जब मैंने राजू से अपने घर वापस जाने को कहा था तो अपने सारे गुस्से के बाद भी उन्होंने मुझे रोक लिया था। मेहमानों में भी राजू बहुत नार्मल ढंग से व्यवहार करते रहे थे। धीरे-धीरे बात पुरानी होती गयी थी। राजू का एक ही सवाल था –"कौन था वह ?" न अब वह मुझे कहीं अकेला आने-जाने देते थे। पूरी कोशिश वह यही करते थे कि ज़्यादा समय मेरे साथ बितायें। नफ़रत-मुहब्बत, दोनों चीज़ें राजू के व्यक्तित्व में मेरे लिये अजीब तरह गड़बड़ हो गई थी।

क्लॉक दस के घण्टे बजा रहा था और अब मेरी बेचैनी सारी जानी-मानी सीमाएं उलांघने लगी थी। राजू अभी तक लौट कर नहीं आये थे···

सन्नाटे में बाहर कम्पाउण्ड में किसी कार के रुकने की आवाज़ आई थी···राजू। तेज़-तेज़ ड्राइंग-रूम तक आयी थी और खिड़की का पर्दा हटा कर बाहर झांका था।

"कितने पैसे ?" किसी पुरुष की आवाज।

"साढ़े पांच रुपये।" दूसरी आवाज़।

"रीगल टाकीज से यहां तक साढ़ेपांच रुपये ?

औरत की आवाज़ थी।

राजू की बड़ी बहन, जीजी, जीजाजी और उनके बच्चे शायद फ़िल्म देखकर टैक्सी से लौट रहे थे। इसका संबंध मकान के दूसरे हिस्से से था।

मैंने पर्दा गिरा दिया था।

दो

ड्राइंग रूम में लौटकर मैं फिर राजू का इन्तजार करने लगी थी। एक-एक पल बोझिल हो गया था। जैसे समय बीतने के बजाय परत-दर-परत वहीं मेरे आस-पास जमता जा रहा हो और समय की उन जमती परतों के बोझ में मैं दबती जा रही हूं। उस हर पल गहरी होती खामोशी और इन्तजार में बताते हुए हर पल के साथ मुझे किसी आने वाली दुर्घटना का विश्वास होता गया था।

"देखे जाओ!" राजू की मम्मी मुझे सुनाते हुए अपनी बेटी और दामाद से कहतीं—"बस, सब-कुछ देखे जाओ! काम पर जाना तो बन्द कर ही दिया है। पत्नी के बनाव सिंगार देखने से कौन रोकता है? मगर पत्नी में भी इतनी समझ हो कि कब बनाव सिंगार करना है! जाने वहां काम के बजाय क्या हो रहा है?"

यह तब की बात है जब मेरी शादी हुए कुछ महीने ही हुए थे।

सच में तो राजू के परिवार से मेरी कभी बनी ही नहीं थी। उनके पिता का देहान्त हो चुका था और वह अपनी लाखों की जायदाद और कंस्ट्रक्शन का बड़ा-सा कारोबार राजू के नाम छोड़ गये थे। राजू उनके अकेले पुत्र थे और ऊषा दीदी अकेली पुत्री। विवाह के फौरन बाद ही मुझे लगा था मम्मी और दीदी मुझसे खुश नहीं थीं। फिर धीरे-धीरे बातें सामने आती थीं और राजू ने खुद ही बताया था कि मम्मी राजू का विवाह किसी

(दू)सरी लड़की से कराना चाहती थी।

"हमारी मम्मी ज़रा पुराने टाइप की हैं। चाहती थीं वहू तो अच्छी (हो) ही, दहेज भी मिले। हम ठहरे तुम्हारे भक्त, अन्त में उन्हें हथियार (डा)लने पड़े।"—राजू ने अपने खास अन्दाज़ में हंसते-हंसते कहा था—"शायद इसीलिए तुम्हारी शिकायत करती रहती हैं। आज भी कुछ कह (र)ही थीं। उन्हें खुश रखने का तुम्हें खास ख्याल रखना पड़ेगा।"

"ख्याल किस तरह रखा जाए ?" मैंने थोड़े तेज़ स्वर में पूछा था—"अगर कोई बुरा मानने को तुला ही बैठा हो तो उसे कैसे खुश रखा जा (स)कता है ?"

राजू थोड़ी देर तक बैठे सोचते रहे थे। फिर उनके चेहरे पर उलझन (के) बजाय हंसी आ गयी थी।

"मालूम है, मम्मी क्या कह रही थीं···?" राजू ने हंसते हुए कहा था, "कह रही थीं कि उनकी पिताजी से शादी के दूसरे ही दिन पिताजी किसी ज़रूरी काम से लाहौर चले गये थे और फिर पांच महीने बाद लौटे थे। यह थे पहले के पुरुष"—मम्मी कह रही थीं, "और पांच महीने में उन्होंने हमें कोई पत्र भी नहीं डाला था।" तो अब बताओ क्या ज़रूरी है कि मैं भी कुछ काम निकाल कर लाहौर ही जाऊं ?" और फिर राजू ने आगे बढ़कर मुझे बांहों में कसते हुए कहा था—"सच बात तो यह है मैं तो तुम्हें एक दिन को भी···"

"वह तो मैं समझती हूं।" न जाने इतनी कड़वाहट मेरी आवाज़ में कैसे इकट्ठी हो गयी थी, "और उसका कारण भी। इसीलिए, जैसा मम्मी कहती हैं, आपका काम उलट-सुलट हो रहा है, नौकर मुनीम पैसे बना रहे हैं, लेकिन मुझे अकेला कैसे छोड़ा जा सकता है। मैं तो इसी का इन्तज़ार करती हूं कि आपकी आंख बचे···!"

सुनकर राजू कुछ देर तक चुप रहे थे। अपनी चुप्पी से शायद वह यह बताना चाहते थे कि मैं गलत शब्दों में बात कह रही थी। फिर थोड़ी देर बाद अपने खास सहजता वाले ढंग से उन्होंने मुझे समझाया था कि वह मुझसे बेइन्तहा प्यार करते हैं। ये और जाने क्या-क्या कि वह मेरे लिए कुछ भी कर सकते हैं, कत्ल, डाका, चोरी।···और मैं अपने आत्-

पास फैली आराम-आसाइश की चीजों को देखती रही थी—कमरों में फिट कूलर्स, रेफ्रीजेटर, बाहर कम्पाउंड में खड़ी कार, पहनने के कीमती कपड़े, खर्च करने के लिये हजारों रुपये, नौकर-चाकर और मुझे लगा था प्रेम तो राजू मुझसे करते हैं।

फिर मम्मी को खुश रखने के लिए राजू के बताये तरीकों को भी मैंने अपनाने की कोशिश की थी। लेकिन मेरी सारी कोशिश के बाद भी मेरी मम्मी से बन ही नहीं पायी थी और उनसे न बनने का मतलब था उषा दीदी और उनके परिवार से भी, जो घर के दूसरे हिस्से में रहता था, एक तरह की ठंडी-जंग। शादी के एक साल के भीतर ही मम्मी भी उषा दीदी की तरफ़ ही शिफ्ट हो गयी थी। अब वह कभी-कभी हमारी ओर आती थीं और वह भी तब जब उन्हें राजू से काम-काज के बारे में कुछ पूछना होता, या किसी न दिखने वाले आगामी खतरे से डराना होता। लेकिन राजू के मामलों में कोई फ़र्क न आया था। उनका ज़्यादातर समय मेरे साथ ही बीतता था।

"प्यार के कुछ ही दिन तो होते हैं।"—वह कहते—"अब कुछ दिनों में तुम्हारे बच्चा हो जायेगा, फिर? धंधा—? अरे कहने की बात है, कल से तुम देखना मैं रेग्यूलरली जाना शुरू करूंगा तो एक हफ़्ते में सब ठीक हो जायेगा। मम्मी तो यूं ही घबराती हैं।"

और अगर राजू मुझे अकेला छोड़कर कहीं जाते भी तो वापसी पर देर तक उनकी नजरें मुझे जासूसों की तरह टटोलती रहतीं और वह मुझसे नजरें मिलाये बगैर बात करते। घर में आने वाले हर आदमी के बारे में पूछताछ की जाती। शादी की पहली रात के बाद से ही यह राजू का नियम था।

एक दिन राजू ने मुझे किसी फ़िल्मी मेगजीन में किसी हीरो की तस्वीर गौर से देखते पकड़ लिया। महीनों--बल्कि आज तक यह बात एक तमाशा बनी हुई है। इस हीरो की कोई फिल्म अगर मैं गलती से भी राजू के साथ देखने गयी हूं, तो सारे समय राजू हाल में बैठकर मुझे घूरते रहे हैं और फिर घर आकर किसी न किसी बात को बहाना बनाकर लड़ाई जरूर हुई है। समय बीतने पर भी उनके रवैये में कोई अन्तर नहीं

आया था।

"मुझे लगता है इनमें से आधे तो साले तुम्हारी वजह से आते हैं।" अपनी आवाज़ में सारी कड़वाहट समेटे राजू ने सहजतापूर्वक कहना चाहा था। अवसर था हमारी शादी की पहली वर्षगांठ का। उस समय सब के जाने के बाद मैं अपने कमरे में बैठी हाथ की चूड़ियां उतार रही थी।—"पहले बुलाओ तो इतने लोग नहीं आते थे।" उन्होंने जोड़ा था। "और खासतौर से·· जैसे हमारे दोस्त रिज़्वी ··!"

राजू चुप हो गये थे और मैं बैठी-बैठी अपनी चूड़ियों से खेलती रही थी। मैंने उन्हें कोई जवाब नहीं दिया था।

"क्या खफ़ा हो गयीं···?" थोड़ी देर बाद मेरी चुप्पी देखकर उन्होंने मेरी कमर के गिर्द बाहें कसते हुए कहा था। मैंने बिना कोई उत्तर दिये या गुस्सा दिखाये उनके हाथों को झटक दिया था।

"नहीं···नहीं...तुम गलत समझ गयीं।" राजू ने एकदम मुझे लिपटा लिया था—"मैं कोई यह थोड़ी कह रहा था कि···अरे बाबा गलती हो गई, भूल जाओ, माफ़ कर दो···। लो हाथ जोड़कर माफ़ी मांग लेते हैं···! अरे यार, चलता है···।"

और फिर उसी दिन···

उस दिन शाम को राजू कहीं गये हुए थे, जब रिज़्वी घर आया था। रिज़्वी से, राजू ने बताया था उनकी बचपन की दोस्ती थी। कभी दोनों साथ खेले थे, फिर साथ स्कूल में पढ़ा था और अब रिज़्वी की शहर में हार्डवेयर की दुकान थी। कन्स्ट्रक्शन के लिए सारा सामान राजू रिज़्वी से ही खरीदते थे। धंधे के बाद भी संबंध धंधे से अधिक दोस्ती के थे।

मैं ड्राइंग-रूम में बैठी रिज़्वी से कुछ बात कर रही थी। कुछ उसने कहा था, जिस पर मुझे हंसी आ गयी थी। तभी बाहर कम्पाउंड में राजू की कार आकर रुकी थी और वह ड्राइंग रूम में आये थे। मेरी नज़रें उनसे केवल पल भर को मिली थीं, लेकिन वह पल राजू की आंखों में आये भाव को देखने के लिये काफी था। वह वही नज़रें थीं जिनसे राजू ने मुझे हमारी शादी की पहली रात तोला था।

"हैलो!" उन्होंने आगे बढ़ा कर रिज़्वी से हा

फिर उन दोनों को बात करता छोड़ मैं अन्दर चली गयी थी।

"यह यहां किसलिए आया था ?" कुछ देर बाद राजू ने अन्दर आकर बर्फ की-सी जमी हुई आवाज़ में पूछा था ? मैंने उनकी आंखों में देखा उस रात वाला वही अजनबीपन, वही क्रूरता और आक्रोश।—"मुझे सब मालूम है !" पास ही पड़े मोढ़े पर धप्प से बैठते हुए राजू ने कहा था, "सब मालूम है ! एक दिन यह तो होना ही था ! मैं ही उल्लू हूं जो तुम्हारे लिए सब-कुछ बरबाद करने पर तुला बैठा हूं ! मां और बहन तक से अपने संबंध खत्म कर लिए। तुम साफ-साफ क्यों नहीं बता देतीं कि क्या चाहती हो ? बताओ ? चुप क्यों हो ?" गुस्से में राजू ने साइड-टेबिल को लात मार कर गिरा दिया था और उसका कांच रेज़ा-रेज़ा होकर पूरे कमरे के फ़र्श पर बिखर गया था। बड़ा-सा चीनी का गुलदान उन्होंने खींच कर मेरी ओर फेंका था। मैं अलग हो गई थी और गुलदान और खिड़की का कांच चकनाचूर हुए थे। फिर वह क़ीमती चीनी का लेम्प-शैड जो बाबा ने मुझे विशेपकर शादी पर भेंट किया था। मैंने किसी न किसी प्रकार राजू को धकेल कर कमरे के बाहर निकाला था और बेड-रूम अंदर से बन्द कर लिया था।

अंदर बैठी मैं आवाज़ें सुनती रही। राजू जो मुंह में आ रहा था, बक रहे थे। गालियां, तरह-तरह के इल्ज़ाम और बेमतलब बातें। उनकी आवाज़ें सुन कर शायद पहले मम्मी आई थीं, फिर उषा दीदी और उनके पति। पहले मम्मी ने राजू से कुछ पूछा था और राजू चीखते-चिल्लाते पैर पटकते कहीं चले गये थे। किसी ने दरवाज़ा खटखटाया, लेकिन मैंने कोई जवाब नहीं दिया था। दोबारा दरवाज़ा खटखटाकर मम्मी ने मुझे आवाज़ दी थी, लेकिन मैं चुप रही।

"जान लेकर पीछा छोड़ेगी !" मम्मी की आवाज़ सुनाई दी थी। वह शायद बाहर इकट्ठे लोगों को बता रही थीं। "सब कुछ तो मिट गया, अब ज़िन्दा भी नहीं छोड़ेगी !"

"औरत को काबू में रखना भी तो मर्द पर है।" उषा दीदी की आवाज़ थी। जीजा जी चुप रहे थे। उन्हें राजू के पिता ने अपने जीवन में लड़की ही नहीं दी थी, नौकरी भी दिलायी थी। शायद इसीलिए वह दीदी

के सामने कुछ नहीं बोलते थे।

बहुत देर तक बाहर से बातों की आवाज़ आती रही थी और मैं बिस्तर पर लेटे-लेटे सब सुनती रही थी। फिर धीरे-धीरे सब चले गये और बाहर खामोशी छा गयी। बिस्तर पर लेटे-लेटे जाने कब मेरी आंख लग गयी जो बहुत रात गये राजू के कमरे का दरवाज़ा पीटने से खुली। मैं आवाज़ें सुनती रही, लेकिन दरवाज़ा नहीं खोला।

अगली सुबह···

"नहीं, तुम तो कुछ समझती ही नहीं हो!" राजू ने गिड़गिड़ाते से स्वर में कहा था "अरे, मेरा मतलब वह थोड़ी था···अरे भाई देखो—रिज़्वी असल में बहुत बुरा आदमी है। इसी से देखो कि साले के पास सब कुछ है, मगर शादी नहीं करता। उम्र भी तीस साल से ज़्यादा होने को आ रही है, मगर नहीं करता। अब तुम्हें क्या बतायें, शादी से पहले हमने खुद उसके साथ-साथ क्या नहीं किया···। नहीं, मैं तुम्हें बता रहा हूं बचपन से ही साला हरामी था। तभी ऐसी-ऐसी हरकतें करता था कि शरीफ लोग तो सोच भी नहीं सकते। टीचर्स भी शरमा कर रह जाते थे। इन्हीं हरकतों से इंटर-कालेज में सबने इसका नाम 'शिकरा' रख दिया था—रिज़्वी शिकरा। शिकरा जानती हो न? वही जो कबूतरों का शिकार करता है।

फिर उस दिन राजू काम पर नहीं गये थे। दिन-भर तरह-तरह की छोटी-मोटी हरकतों से वह मुझे खुश करने की कोशिश करते रहे थे, "बस, एक बार हंस दो"···और अन्त में मैं हंस दी थी। यही राजू के लिए काफी था। उसी शाम हम लोग फिल्म देखने गये, वहां से "मून एंड स्टार्स" फ्लोर-शो देखा और वहीं रेस्तरां में खाना खाया। राजू ने खासी शराब भी पी और मुझे भी मजबूर कर-करके जिन पिलायी। काफी रात गये जब हम लोग वापस लौटे तो राजू ने इतनी शराब पी ली थी कि रह-रह कर उनका हाथ स्टीयरिंग पर बहक रहा था।

जब कार कम्पाउंड में दाखिल हुई तो घर का वह हिस्सा जिधर मम्मी उषा दीदी के साथ रहती थीं, मुझे बड़ा थका-हारा, अकेला-सा अंधेरे में खड़ा लगा। मैं कार में ही बैठी रही। पता नहीं क्यों. मेरी

हिम्मत घर के अपने हिस्से को देखने की नहीं हुई। फिर राजू ने मुझे अपनी बाहों में उठाया और अंदर ले चले…

तीन

समय बीतता गया था और समय के साथ-साथ हालात बिगड़ कर सामने आते गये थे। इन हालात का असर राजू पर भी अजीब ढंग से पड़ा था। पहले तो वह विश्वास ही नहीं कर पाये थे कि चीजें उनके काबू से बाहर हो गयी हैं, फिर पैसे की कमी उन्होंने जायदाद बेचकर पूरी करने की कोशिश की थी। धीरे-धीरे दुर्घटना के नाम पर इतना कुछ हो गया कि किसी छोटी बात को लेकर परेशान होने की आदत खत्म हो गयी। पहाड़ी का बंगला बिका, शहर के छुटपुट मकान बिके, दफ्तरों के नौकर निकाले गये, दोस्तों का आना-जाना कम हुआ। राजू का घर से निकलना लगभग बन्द हो गया। इसी बीच अंशुल पैदा हुआ था और अब दो वर्ष का होने को आ रहा था। राजू आज भी मुझे किसी आदमी के साथ बात करते गवारा नहीं कर पाते। धंधे की तरफ जब वह लौटे थे तो बहुत देर हो गयी थी। रेगिस्तान में प्यासा ऊंट जब तक चलता है तो चलता जाता है, एक बार बैठा तो फिर उठ नहीं पाता। राजू की कोशिशों के बाद भी चीजें लगातार बिगड़ती ही चली गयी थीं।

"सब हरामजादे हैं, साले!" थके-हारे जब वह घर लौटते तो समझाने के अन्दाज में कहते, "किसी पर जरा-सा भरोसा करना मुश्किल है… वही छुरा भोंकता है! वे अपना बुड्ढा मुनीम-देसाई—जो मम्मी को सारी खबरें देता रहता है, इसने भी बरबाद करने में कम हिस्सा नहीं लिया है। वे और शरीफ—साले सब ठेकेदार की खाते रहे हैं। खैर!" वह हौसला बांधते हुए कहते, "थोड़े दिनों की बात है, सब ठीक हो जायेगा। मगर

सबसे पहले इन दोनों को निकालूंगा।"

राजू की परेशानी उनके चेहरे-मोहरे और रोज की ज़िन्दगी में भी झलकने लगी थी। अब वह खाना खाते-खाते नाराज होकर बर्तन तोड़ देते, गुलदान चकनाचूर कर देते। एक दिन किसी बात पर नाराज होकर उन्होंने रेडियो-ग्राम लातें मार-मारकर तोड़ डाल था। बस, रोज रात को मेरे सामने राजू अपने आपको बखेर देते। "वैसे सब वक़्ती है, थोड़े दिन में ठीक हो जायेगा, लेकिन" और उनकी आवाज़ खो-सी ज़ाती, "लेकिन अगर यह सब खत्म भी हो जाये, सब बर्बाद हो जाय, लुट जाय, तो भी अगर तुम हो तो मुझे कोई दुःख नहीं होगा। मैं यह सब हज़ार बार तुम्हारे पैरों में डाल सकता हू।"

राजू की मम्मी इस उम्मीद पर कि अब कुछ होता है, अब कुछ हो जायेगा—पहले तो जायदाद को इकाइयों में बंट कर बिकता देखती रही थीं, फिर शायद उन्हें लगा होगा कि ढलान पर लुढ़कते बड़े से पत्थर का कहीं बीच में ही रुक जाना सम्भव नहीं, बल्कि जो छोटे-मोटे पत्थर उसकी लपेट में आ जाते हैं, वह भी उसी के साथ नीचे की ओर लुढ़कते जाते हैं। अन्त में राजू ने जब घर के बाहर वाली दूकानें भी बेचनी चाही थीं जो कानूनन मम्मी की प्रापर्टी थीं तो मम्मी ने साफ इंकार कर दिया था।

"जानती हो, बुढ़िया क्या कह रही थी?" उस रात राजू ने तीन-चार सिग्रेट एक के बाद एक फूंकने के बाद कहा था, "कह रही थी, कुछ हक दीदी का भी है और उसे भी कुछ मिलना चाहिए। शादी जैसे दीदी ने खुद अपने पैसे से की हो! सब साले ऐसे ही हैं।" एकदम निराशा उनके शब्दों में जैसे गहरी हो गयी थी, "कुछ दिनों की बात है, कोई साला ये नहीं समझता। अभी तो हमारी हालत घर वालों को ही मालूम है ना—कल जब बड़ी उधारी वालों को पैसा नहीं मिलेगा, तो छोटे-छोटे भी फौज लेकर हमला कर देंगे। फिर आयेगा मजा! दिवालिया! सब नीलाम हो जायेगा। साले, सर छुपाने को किसी को जगह नहीं मिलेगी! हो जाय—हमने भी सोच लिया—अब तो ऐसी ही हो जाये।"

कर्ज़ा-कर्ज़ा-कर्ज़ा। पता नहीं। किन-किन का कितना, कितना राजू पर निकलता था। रात में अब राजू सोते से चौंक-चौंक कर जागने लगे

थे। कभी-कभी सोते हुए वह मुझसे लिपट जाते। "नहीं," वह बड़बड़ाते हुए-से मुझसे कहते, "नहीं यार, तुम हो तो कोई ग़म नहीं। सब ठीक हो जायेगा।" और उसके थोड़ी देर बाद ही, "यार, क्या किया जाये ? कहीं न कहीं से तीस हज़ार का इन्तज़ाम करना है। बताओ क्या करूं ?"

"कार बेच दो," एक दिन मैंने धीरे से कहा था।

"एं···?"

"कार बेच दो। कार और घर का दूसरा कीमती सामान। और ···और मेरे जेवर।" मैंने उन्हें समझाने के अन्दाज़ में कहा था।

"पागल हो गयी हो क्या !" राजू एकदम चिल्लाये थे, "इससे अच्छा तो यह होगा कि मैं खुद ही अपने दिवालिया होने का इश्तहार छपवाकर शहर में बंटवा दूं ! अभी तो इन हाथों में इतनी ताकत है कि बग़ैर तुम्हारे सहयोग के कहीं से भी कुछ-न-कुछ कर सकते हैं ! जेवर···तुम समझती क्या हो ?"

फिर कुछ देर बाद संयत स्वर में मुझे समझाते हुए उन्होंने कहा था, "इन सब चीज़ों की अब तो और भी अधिक ज़रूरत है। कल को अगर हम कार बेचते हैं, तो एक पल में सारे शहर को मालूम हो जायेगा हमारी हालत क्या है। छोटे-बड़े सब समझ जायेंगे कि राजेन्द्र कुमार कन्ट्रैक्टर निपट गये। समझदारी इसी में है कि किसी-न-किसी तरह यह थोड़ा-सा समय निकाल दिया जाये। इस तरह कि किसी तरह किसी को कुछ पता न चल पाये। बुरा समय किस पर नहीं आता ? कल समय बदलेगा। आज ही मैंने एक ज्योतिषी को हाथ दिखाया था और कल उसने मुझे जन्म-कुण्डली के साथ बुलाया है। वह भी कह रहा था कि अगर यह वर्ष गुज़र गया तो आने वाला समय बहुत अच्छा है।"

"आप समझते हैं हमारी यह हालत और कोई नहीं जानता ?" मैंने अपने स्वर में आते व्यंग्य को दबाते हुए पूछा था।

"एक-दो दोस्तों के सिवाय कौन जानता है ? नारायण को मालूम है···और रिज़्वी को। और रिज़्वी को भी इसलिए कि उसका खुद का भी काफी पैसा निकलता है। अभी तो मैंने उससे कह दिया है कि तुम कुछ दिन ठहर जाओ। तुम तो दोस्त हो, आज नहीं, कल भी दिया जा सकता

है। पहले जरा मार्किट का थोड़ा कर्जा पट जाये, फिर तुम्हें दे देंगे। एक अच्छी बात है कि साला मान लेता है। कहने लगा—तुम कोई अलग हो? कभी भी दे देना, दोस्ती…"

कुछ दिन और बीते थे और फिर एक रोज राजू मेरे ज़ेवर ले गये थे, "गिरवी रखने के लिए" उन्होंने मुझसे नज़रें बचाते हुए कहा था, "कुछ दिन बाद उठा लेंगे।" और फिर उन्हें गुस्से के फिट्स आना भी बन्द हो गये थे। उन्होंने घर के बाहर निकलना बन्द कर दिया था। कहीं पुराने सामान से उन्होंने एक गीता खोज निकाली थी जिसका पाठ दिन भर चलता रहता था। और तो और नन्हें अंशुल को भी गीता के श्लोक समझाने के प्रयत्न किये जाते थे। और हां, घर के बाहर या आस-पास के भिखारियों का निकलना मुश्किल हो गया था। राजू रेज़गी की थैली लिये उनके इन्तज़ार में बैठने लगे थे। "किसी तरह यह साल गुज़ारना है" वह कहते।

"तुम…" वह मेरी ओर खोयी हुई नज़रों से देखकर कहते, "तुम्हारी मम्मी कितने दिन से लिख रही हैं, तो तुम पूना हो क्यों नहीं आतीं?"

"आप चल पायेंगे?"

"नहीं, नहीं," वह परेशान स्वर में कहते, "मैं कैसे जा सकता हूं।"

"मुझे अकेला जाने देंगे?"

और वह चुप हो जाते।

शादी के बाद के इन पांच वर्षों में राजू ने मुझे अपनी मां के घर तक अकेले नहीं जाने दिया था। पूना का सब कुछ एक सपना बन कर रह गया था। इन पांच वर्षों में केवल मम्मी, बाबा, ज्योति और पप्पू से मिलना हो पाया था—तब जब वह हमारे यहां आकर कुछ दिन के लिए ठहरे थे। मैं एक बार भी पूना नहीं जा पायी थी, न ये मालूम था कि रीता, अलका, अब क्या कर रही हैं। जो कुछ भी मालूम होता था या तो मम्मी या फिर ज्योति के पत्रों से। और ज्योति अंशुल के जन्म पर एक महीने के लिए मेरे पास भी आकर रही थी। बस।

चार

—रात के इस समय ?

मैंने घड़ी की ओर देखा—बारह बजने में बीस मिनट थे। राजू आते तो कार की आवाज़ सुनायी देती। फिर इस समय आने वाला कौन हो सकता है ? और राजू ? मेरी बेचैनी सीमाएं उलांघने लगी—राजू अभी तक कहां अटके हुए हैं ?

बाहर कोई रह-रहकर कॉल-बेल का बज़र दबाये जा रहा था।

राजू को गये चार घंटे से ज़्यादा होने को आ रहे थे।

"हो आता हूं" जाने से पहले उन्होंने बहुत थकी-हारी आवाज़ में कहा था, "ऐसा जाने क्या ज़रूरी काम मेरे न जाने मे अटक रहा है !" उनके स्वर में झल्लाहट थी। फिर कार में राजू, रिज़्वी के यहां रवाना हो गये थे।

इन दिनों रह-रहकर टेलीफोन की घण्टियां बजना तो एक मामूली बात हो ही गयी थी, लेकिन आज दिन में पांच बार रिज़्वी का फोन आया था। ज़्यादातर फोन पर मुझे यही कहना होता था कि राजू घर पर नहीं है और यही मैंने रिज़्वी से कहा था। राजू ने मुझसे यही कहने को कहा था। इसके बाद भी हर टेलीफोन के साथ राजू का रंग पीला पड़ता गया था। अन्त में रिज़्वी का रुक्का लिये एक आदमी खुद आया था और उसको देखकर राजू के रहे-सहे हवास भी जाते रहे थे। कांपते हाथों से उन्होंने लाये गये रुक्के को पढ़ा था और, "तुम चलो हम आते हैं" रुक्का लाने वाले से कहा था। रुक्के में लिखा था, "बहुत ज़रूरी काम है फौरन मिलो, रिज़्वी।"

"ऐसा भी क्या काम हो सकता है ?" अन्त में मैंने झुंझलाकर पूछा था।

"मुझे क्या पता ?" राजू ने मुश्किल से इतना ही कहा था और एक-दम चुप हो गये थे। उनके चेहरे पर जिस तरह की भावहीनता थी, उसे

मैं समझती हूं। बहुत ज़्यादा परेशानी में ही राजू की यह हालत होती है। मुझे उसी समय डर लगा था। फिर राजू चले गये थे और यह डर धीरे-धीरे मेरे ख़ून में मिलकर शरीर के रगों-रेशे में दौड़ने लगा था। डर—किसी अनजानी बात का डर।

और इस समय राजू को गये चार घण्टे से भी ज़्यादा हो चुके थे।

बाहर से फिर किसी ने बजर प्रेस किया था और मैं उछल कर खड़ी हो गयी थी। कॉल-बेल की आवाज़ें सुनकर अभी अगर अंशुल जाग गया तो रो-रोकर सारा घर सर पर उठा लेगा। तेज़-तेज़ चलती ड्राइंग-रूम तक आयी थी।

"कौन है!" हिम्मत करके मैंने पूछा था। जवाब में फिर किसी ने बज़र दबाया था जो इस बार बजता ही गया। एकदम तैश में आकर मैंने दरवाज़ा खोला था।

बाहर राजू खड़े थे।

"अरे आप!" मेरे मुंह से निकला था, "मैं सोच रही थी पता नहीं कौन इस समय···"

राजू वहीं खड़े रहे थे। मैंने देखा उनकी आंखें गीली हो रही थीं, सांस धौंकनी की तरह चल रही थी और कपड़े अस्त-व्यस्त हो रहे थे।

"क्या बात है?" मैंने आगे बढ़कर पूछा था। "आप हो कैसे रहे हैं?" और फिर मैंने देखा था, कम्पाउंड में कार नहीं थी। "क्या बात है, क्या आप पैदल आ रहे हैं?"

बड़ी मुश्किल से खींचकर मैं राजू को अन्दर लायी थी। वह पसीने से डूबे हुए थे, टाई की गांठ तिरछी होकर झूल रही थी और सीना धौंकनी की तरह फूल पिचक रहा था। सोफे पर बिठाकर मैंने उनका कोट उतारते हुए पूछा था, "क्या बात है बताइए ना?" कार कहां गयी? आप यहां तक कैसे आये हैं? बोलिये ना?" मेरी आवाज़ आप ही आप तेज़ हो गयी थी।

"रिज़्वी···" मुश्किल से राजू के मुंह से इतना ही निकला था और एकदम वह फफक-फफक कर रो पड़े थे।

"बताओ, अब क्या होगा···?" उन्होंने घुटी-घुटी आवाज़ में

"कल सबको मालूम हो जायेगा कि मैं दीवालिया हो गया हूं ! उसने कार वहीं रखवा ली···रिज़वी ने बातों-बातों में मेरे हाथ से कार की चाबी ले ली और कहने लगा आप यहां से पैदल जायेंगे। पहले तो मैं समझा, साला मज़ाक कर रहा है। फिर मैंने उसे समझाया कि तुम तो दोस्त हो···और फिर अब थोड़े ही दिनों में तुम्हारा सब पैसा अदा हो जायेगा, सिर्फ कुछ दिन और सब्र कर लो। सब साला चुपचाप सुनता रहा। फिर चलते समय जब मैंने चाबी मांगी, कहने लगा कौन-सी चाबी ? आप यहां से पैदल जायेंगे। मैंने उससे क्या-क्या नहीं कहा, किस-किस चीज़ का वास्ता नहीं दिया, अरे, आखिर में उसके पैर पकड़ लिये कि सारी इज़्ज़त तेरे हाथ में है···बस, कुछ दिन···हाथ जोड़ लिये। अब बताओ क्या होगा ? अब कल क्या होगा ?"

राजू लगातार बच्चों की तरह फूट-फूटकर रोये जा रहे थे और कह रहे थे, "कल क्या होगा ? अब कल क्या होगा ?"

"अब क्या हो सकता है राजू, रोने से ? मतलब, जो कुछ भी होना होगा, ठीक है। भुगत लेंगे।" मैंने उनके पास बैठकर सिर के बालों में उंगलियां फेरते हुए कहा था, "इतना परेशान क्यों होते हो ?"

"नहीं, नहीं," राजू ज़ोर लगाकर बोले थे, "अरे, तुम नहीं समझतीं ! तुम्हें कैसे बताऊं सब गड़बड़ हो जायेगा। सब मिट्टी में मिल जायेगा।" राजू बराबर रोये जा रहे थे और उनकी आंखों से आंसू फूटे पड़ रहे थे, "सब खत्म हो जायेगा। सब···" फिर ऐसा लगा जैसे राजू बेहोश हो गये हों।

"राजू···।" मैं लपककर पानी का गिलास लायी थी, कुछ पानी उनके हलक में डाला था और मुंह पर छींटे देते हुए उन्हें आवाजें दी थीं। पहली, दूसरी, फिर तीसरी आवाज़ पर उन्होंने हुं-हां किया था।

"मम्मी···अरे मम्मी !" इस बार होश में आते ही उन्होंने मम्मी को पुकारना शुरू कर दिया था। "अरे बचा लो, अरे कोई मुझे बचा लो, अरे कोई···" और वह फिर बेहरकत हो गये थे।

देर तक मैं बेसुध-सी उनके पास बैठी रही थी। मुझे नहीं मालूम, उन क्षणों में क्या हुआ था, मैंने क्या सोचा था। मुझे यह भी नहीं मालूम कि

उन पलों में मैं जीवित भी थी या नहीं।

"बचा लो..." राजू ने थोड़ा करवट बदलते हुए कहना शुरू किया था।

"राजू!" मैंने ऊंची आवाज़ में उन्हें पुकारा था। लग रहा था समय एकदम बहुत तेज़ी से बीतने लगा।

"राजू" मैंने दुहराया, "तुम घबराओ मत, मैं अभी थोड़ी देर में वापस आती हूं।"

राजू बिल्कुल चुप रहे थे।

डेढ़, दो, या ढाई घण्टे बाद कार का हॉर्न सुनकर राजू दीवानावार घर के बाहर निकले थे। उस समय कार की हैड-लाइट्स जल रही थीं और उसकी रोशनी में भी उनके चेहरे पर एकदम आ गये, आश्चर्य से अधिक इत्मीनान के भाव को मैं साफ-साफ देख सकती थी। वह एकदम से खुश और निश्चित हो गये थे।

मैंने वहीं कार की सीट पर बैठे-बैठे देखा—राजू की मम्मी की ओर वाला मकान का हिस्सा इस समय भी बिल्कुल सुनसान था। सुनसान और अंधेरा।

गाड़ी की हैड-लाइट्स बुझाने और इंजन ऑफ़ करने के बाद हम लोग नीचे उतरे थे। रिज़्वी ने चाबियों का गुच्छा हवा में उछाला था और राजू ने उत्सुकता से उछलकर उसे हवा में ही थाम लिया था।

"अच्छा" थोड़ी देर बिल्कुल चुप खड़े रहने के बाद रिज़्वी ने कहा था, "अच्छा, मैं चलता हूं। अच्छा राजू। अच्छा भाभी।"

"मगर यार, जाओगे कैसे?" राजू ने बेचैनी से कहा, "क्या बताऊं, इस समय तो तुमने मेरी इज़्ज़त रख ली। चलो मैं चलता हूं, तुम्हें कार में छोड़ आता हूं।"

"दोस्त ही दोस्त के काम आते हैं।" रिज़्वी ने कहा था, "तुम फिक्र मत करो, पास ही तो घर है। टहलता हुआ निकल जाऊंगा। इतनी रात गये तुम्हें तकलीफ देना अच्छा नहीं लगता। अच्छा भाभी," और रिज़्वी कम्पाउंड के बाहर निकल गया था।

थके कदमों मैं अन्दर चली थी और राजू मेरे पीछे-पीछे।

"सब गड़बड़ हो जाता, मुझे तो आत्महत्या ही करनी पड़ती। इस समय तुमने वह काम किया है जो···। और खुद मैंने साले को कैसे-कैसे समझाया, किन-किन चीजों के वास्ते दिये, तुम तो जानती भी नहीं, हम लोग कितने छुटपन से साथ रहे हैं। एक ही स्कूल में पढ़ते थे, एक ही मास-साब श्रीवास्तव सर से घर पर ट्यूशन लेते थे।···मैं लेता था, यह आकर वैसे ही बैठ जाता था। उन दिनों पिताजी का जंगल का काम चलता था और रिज़्वी के अब्बा, आलम साब जंगल के पटवारी थे—दिन-रात पिताजी की अर्दली में रहते थे। मगर साले ने क्या आंखें फेरी हैं···मैं तो डर रहा था कहीं दिल का दौरा न पड़ जाये···मगर तुमने तो कमाल ही कर दिया।"

राजू लगातार बोले जा रहे थे। भीतर कमरे में वह सोफे पर आराम से फैलकर बैठ गये थे। जैसे किसी पिकनिक से थके-हारे लौटे हों। मैं अन्दर अंशु के पास चली गयी थी।

—क्या कुछ हुआ था ? पता नहीं। मेरा दिमाग बहुत अन्दर तक बिलकुल खाली हो गया था। और वह डर। रगों में दौड़ते-दौड़ते जैसे एकदम दर्द में परिवर्तित हो गया था—खून में घुल कर रगों में, हाथों, पैरों, दिमाग में धड़कता दर्द। मैं बिना कपड़े बदले वैसे ही अंशु के पास लेट गयी थी। क्या कोई ऐसी धुन नहीं होती जिसे जब मां गुनगुनाये तो बच्चा जाग जाय···सपनों को छोड़ कर उसके पास आ जाये···?

"लेकिन"—राजू ने ड्राइंग-रूम से ही पुकारा था। कुछ देर की चुप्पी रही थी, फिर राजू के उठते कदमों की आवाज़ सुनाई दी जो धीरे-धीरे करीब आती गयी थी। मैंने लेटे-लेटे आंखें बन्द कर लीं।

"मगर तुमने आज साबित कर दिया !" मेरे पास मसहरी पर बैठते हुए राजू मेरे ऊपर झुक गये थे, "यही कि तुम सचमुच मेरी बेटर-हॉफ हो।"

"प्लीज, राजू"—मैं करवट बदलकर अलग हो गयी और राजू वैसे ही बैठे रहे थे।

"क्या बात है ?" उन्होंने मेरे पास खिसकते हुए कहा था। उनकी आवाज में बला का प्यार उमड़ता आ रहा था, "तुम कैसी हो रही हो ?

क्या थक गयी ?"

"नहीं राजू, हर काम का एक समय होता है।" मेरी आवाज़ आप ही आप तेज़ होती गयी थी, "ये क्या हुआ कि खाना वनाते में, नहाते-धोते में, वच्चे को दूध पिलाते में हर जगह वस वही ? हम लोग भी इंसान ही है ना ? कुत्ता-विल्ली तो नहीं। नो राजू, आई हेट इट, नो।"

राजू सुन्न से वैठे रह गये थे। ऐसे, जैसे उन्हें सांप सूंघ गया हो। एक खास तरह की शर्मिन्दगी में डूवी मुस्कान उनके चेहरे पर फैल गयी थी। इस मुस्कान को मैं वहुत अच्छी तरह जानती हूं। जव भी राजू यों मुस्कराते हैं, अन्दर-ही-अन्दर उनका वदन जलने लगता है और हाथ-पैर वेकावू होने लगते हैं। कुछ देर वैसे ही चुपचाप वैठे रहने के वाद राजू ज़ोर से हंसे थे, मगर यह हंसी खुद उनसे ही टकरा कर टूट-सी गयी थी।

"अरे यार" उन्होंने फिर से आगे वढ़ते हुए कहा था, "तुम तो नाराज़ हो गयी। क्या वात है ?"—उन्होंने दुलारते से स्वर में पूछा था, "लाओ, तुम्हारे हाथ-पैर दाव दें। हुक्म दो।"

मैंने एकदम राजू की आंखों में देखा था।

"क्या, हुआ क्या है ?" एक पल को उनकी आवाज कांपी थी।

"वात पूछते हो ? तुम समझते हो तुम न निकालोगे तो मैं भी चुप रह जाऊंगी ? कुछ नहीं हुआ। मैं रिज़्वी के घर गयी थी। वह मेरा इन्त-ज़ार कर रहा था। उसने मुझे कार में विठाया और यहां छोड़ गया—कार भी और मुझे भी। और वेचारा खुद पैदल ही चला गया। यही हुआ ना, क्यों ?"

"तुम्हारा मतलव क्या है ?" आप ही आप राजू की नज़रें मेरी नजरों से हट गयी थीं। मैंने देखा उनके हाथों में हल्की-सी कंपकपी थी।

"मतलव ?" मेरी आवाज़ एकदम वेकावू हो गयी थी। फिर मुझे भी अपनी व्लाउज़ के वटन टूटने और चिरने की आवाज़ ही सुनायी दी थी। विल्कुल पागलपन से मैंने व्लाउज़ अपने शरीर से अलग किया था। "ये" मैंने अपने वक्ष पर पड़ी खराशों और जगह-जगह उछले हुए लाल दागों को उनके सामने नंगा करके कहा था, "ये राजू, रिज़्वी के दांतों, उसकी दाढ़ी, उसके नाखूनों के खरांचें हैं। और कुछ…?"

राजू एकदम धप् से उसी जगह ढेर हो गये थे।

मैं फिर से अंशु के पास लौट गयी थी। जो बच्चे बचपन में सुकून की नींद सोते हैं, बड़े होकर दुनिया में बड़े-बड़े काम करते हैं अंशु—बेटा।

"सो जाओ···" कमरे की फैली हुई रोशनी में मैंने राजू को आवाज़ दी थी, "बहुत रात बीत चुकी है।"

पांच

सारी रात मुझे तरह-तरह की आवाज़ें सुनायी देती रही थीं। घर से दूर सड़क पर से गुजरते ट्रक, दूर कहीं भौंकते कुत्ते और सन्नाटे में रह-रह कर गश्त करने वाले की सीटी—जाने कौन-कौन-सी आवाज़ें थीं जो रात भर मुझे परेशान करती रही थीं और मैं रह-रह कर बिस्तर पर चौंक कर अंशुल को खुद से चिमटाती रही थी। अन्त में जब आंख खुली तो रोशनी फैल चुकी थी और धूप ड्राइंग-रूम की खिड़की फलांग कर अंदर आ चुकी थी। नौकरानी ने पोंछा कर दिया था और रसोई से बर्तनों के खनकने की आवाज़ें आ रही थी।

अंशु और राजू दोनों कमरे में नहीं थे।

"साब कहां है ?" मैंने रसोई के बाहर से आवाज लगाकर नौकरानी से पूछा था। उसने बताया, कि उसके आने पर साब घर में नहीं थे। दर-वाजा उसे खुला मिला थी।

"और अंशुल ?"

"बाबा ? बाबा को सुमन ले गयी हैं, बड़े घर। आप सो रही थीं और अंशुल बाबा रोने लगे। हमने उनको बाथ-रूम करा के, नहला कर कपड़े पहना दिये, दूध पिला दिया। बाई, सचमुच अंशुल बाबा कितने समझदार हैं। मैं पोडर छिड़क रही थी, गलती से आपका पोडर हाथ में आ गया,

एकदम चिल्लाने लगे, "मम्मी का···सवको नहीं···मम्मी का···। कितने छोटे हैं पर···फिर सुमन उन्हें ले गयी—वड़े घर।"

केवल अंशु ही था जो घर के दोनों हिस्सों में विना रोक-टोक जा सकता था। वड़े घर, यानी मम्मी और दीदी की तरफ। मम्मी उसे अपने पास वुलवा लेती थीं, और तरह-तरह से उस पर स्नेह की वर्षा करती थीं। एक दिन तो जव मैंने भी अंशुल से पूछा था कि अंशुल वेटा किसका है, तो उसने मम्मी या डैडी के कहने के वजाय 'दीदी का' कहा था। तरह-तरह की हरकतें करके वह उनका दिल वहलाता था। अभी वह वोलना सीख ही रहा है और शव्द अभी सही-सही उसके मुंह से निकलना शुरू भी नहीं हुए थे, लेकिन जो देखता है वह यही कहता है कि वहुत समझदार वच्चा है।

"देखना, वड़ा होकर अंशु कितना तेज़ निकलेगा।" मैं राजू से कहती और राजू एक चुप-सी मुस्कान लिये, जिसके पीछे गर्व भी होता था और दवी-दवी-सी ईर्ष्या भी, चुपचाप देखते रहते।

"तुम देखना" वह शरारत से कहते, "मेरी तो वेटी होगी। साले, जव सड़क पर निकला करेगी, लड़कों के दिलों पर हल-चल जाया करेंगे! तुम देखना।"

"जी चाहता है साले का मुंह नोच लो···" अंशु को मेरी छाती से चिपटकर दूध पीते देखकर वह प्यार मिले गुस्से से कहते, "पेट भर जायेगा, तव भी साला नहीं छोड़ेगा!" और फिर प्यार से वह उसके चिमटी नोंच लेते, "अरे वेटा, छोड़ दो, कुछ हक तो हमारा भी है!" और यह सव कहते समय भी प्यार और गुस्से की तह में डोलती ईर्ष्या होती थी।

"अंशु मेरा वेटा!" कहकर मैं और अंशु को सीने से चिमटा लेती थी।

लेकिन राजू? उनका इस समय घर पर न होना? इतनी सुवह राजू घर से कभी नहीं निकलते थे। जिन दिनों काम वहुत जोरों पर था, तव भी नहीं।

"साले इतनी जो तनख्वाह खाते हैं किसलिये हैं? वुड्ढा दीसाई किस लिए है?" दिन के लगभग दस वजे वह विस्तर पर ही चाय पीते हुए कहते, "ये सव पैसा और आराम का सामान किसके लिए

सब हो ही जाते हैं।"

फिर इस समय राजू कहां जा सकते हैं ? और इन दिनों जब कि वह घर से बाहर ही न निकलना चाहते थे। मैंने उसी जगह खड़े-खड़े नौकरानी को फिर से आवाज़ दी। एकदम जाने क्या हुआ और मुझे लगा जैसे जमीन ने मेरे पैर पकड़ लिये हों। "जी बाई,"—कहती हुई नौकरानी रसोई के बाहर आयी थी।

"कुछ नहीं, रहने दो," मैंने उस से कहा था और एक पल को वह मुझे अजीब-सी नज़रों से देखती रही थी। "जाओ तुम अपना काम करो," मैंने कहा।

बोझल कदमों, फासला तय करती मैं ड्राइंग-रूम तक आयी थी, और वहां तक आने में ही थक गयी थी। दिल छाती में धड़कता साफ सुनाई देने लगा था—वहीं कहीं पसलियों में तड़प कर टकराती दिल की धड़कन और रगों में दौड़ते, लौटते खून का खिंचाव और तनाव। मैंने हिम्मत करके बाहर का दरवाज़ा खोला था और फिर एक ही पल में मैं बिल्कुल हल्की हो गयी थी। ज़मीन ने, जैसे आप ही आप मेरे पांव छोड़ दिए थे।

तमतमाती धूप में बाहर कार वैसे ही खड़ी हुई थी। उसी जगह।

अन्दर ड्राइंग-रूम में एक टेबिल पर सारी ऐश-ट्रे सिगरेट के टोंटों और राख से भरी रखी थी और सोफे के हत्थे पर, कमरे के फ़र्श पर, कोनों में हर जगह सिग्रेट के गुलों और अध-जली सिग्रेटों का ढेर था। एक टेबिल क्लॉथ दो तीन जगह से जल गया था और कालीन का एक हिस्सा भी राख में खाकी हो रहा था। मतलब यह कि राजू रात-भर जागते रहे हैं।

देर तक मैं एक कमरे से दूसरे में टहलती रही—यूं ही बेमक़सद। फिर तौलिया उठाकर बाथ-रूम में बन्द हो गयी और जाने कब तक अपने ऊपर पानी बहाती रही।

"मैं सब देख रहा हूं···" राजू सिसकारी लेकर बाहर से कहते थे, "बाथरूम के दरवाजे के बाहर से—"अरे यार···।" उनके स्वर में विनती होती—"अरे दरवाज़ा खोल दो यार ! खोल दो ना ! हम कोई गैर हैं क्या ?"

"राजू प्लीज नहीं" मैं पता नहीं क्यों घबरा जाती, "देखो प्लीज

राजू, मैं मम्मी से कह दूंगी।"

दरवाज़े में राजू ने पता नहीं कैसे सनें बना ली थीं और उनमें से मुझे नहाता हुआ देखते रहते थे। आंख लगाकर सनों में से झांकते रहते थे। "मालूम है..." वह कहते "औरत सब से अच्छी कब लगती है? नहाते हुए। और खास कर तब, जब कोई मर्द उसे नहाते हुए देख रहा हो।"

"अगर इसमें कोई बुराई होती—" वह तर्क देते, "तो बाथ-रूम-अटेच-टु-बेड-रूम होता ही क्यों? अंग्रेज़ जो भी करता था सोच-समझ कर करता था। घर का यह पूरा हिस्सा मेरी मर्ज़ी का बना है। हमारे पिता जी को तो इसमें कोई पाइन्ट ही नजर नहीं आता था।"

बाथ-रूम के बाहर वह दीवाने-से इन्तज़ार करते रहते और जब मैं निकलती तो...! फिर जब मम्मी दीदी की तरफ शिफ्ट हो गयी थी और अंशुल का जन्म नहीं हुआ था तो उस दिन...

"यह क्या कर रहे हो?" राजू को बाथरूम के दरवाजे से जूझते देख-कर मैंने पूछा था। खटर-पटर की आवाज़ सुनकर मैं रसोई से अन्दर आयी थी।

"कुछ नहीं।" राजू ने बाथ-रूम के दरवाज़े का अन्दर का बोल्ट उखा-ड़ते हुए कहा था, मैं चुपचाप देखती रही थी और बहुत परिश्रम से उन्होंने बोल्ट उखाड़ कर बाहर कबाड़े में ले जाकर फेंक दिया था। अब मैं दर-वाज़ा अन्दर से बोल्ट नहीं कर सकती थी।

मैं अपने शरीर पर से पानी बहाती रही और दरवाज़े के उस उखड़े हिस्से को देखती रही जहां कभी बोल्ट लगा हुआ था। पूरे दरवाज़े पर पीला पेंट था। सिर्फ वह जगह जहां से बोल्ट उखाड़ दिया गया था छिली हुई लकड़ी के रंग की रह गयी थी। लेकिन मैंने अपनी हमेशा की आदत से दरवाज़ा बन्द कर लिया था।

क्या कुछ हुआ था? क्या? कब? पिछली रात मैं कहां थी?

बाथ-रूम से बाहर निकलने पर मैंने देखा, राजू किसी तरह [illegible] आ गये थे। रात वाले ही सूट की पतलून और कमीज़ पहने [illegible] थे। मसहरी के पास ही उनकी मखमल की बेड-रूम स्लिपर [illegible] जिनके पट्टों में धूल-गर्दा भर गया था। मखमल के का

खाकी लग रहे थे। उनकी दाढ़ी एक ही रात में बढ़ आयी थी। इस समय उनकी आंखें बन्द थीं और पैर आप ही आप हिल रहे थे। मैं खामोशी से कमरे के बाहर निकल आयी थी।

इसी बीच, मैंने बाहर आकर देखा, अंशुल भी वापस आ गया था, और सुमन, विनय, गुड्डू के साथ बरामदे में खेल रहा था। अंशु की रेल-गाड़ी की बैटरी शायद कमजोर हो गयी थी इसलिए वह चल नहीं पा रही थी। दूसरा बच्चा विनय उसकी ठोंका-पीटी में लगा हुआ था। मुझे देखते ही अंशु ने ठुपकना शुरू कर दिया था, "नई चलती" वह रेलगाड़ी की ओर इशारा करके कह रहा था। लपक कर मैंने अंशु को गोद में उठा कर प्यार किया, फिर दूसरे कमरे में टॉर्च के सेल खोजने चली गयी।

सुमन, विनय और गुड्डू, तीनों उषा दीदी के बच्चे—मैंने हमेशा देखा है, मुझे देखकर सतर्क हो जाते हैं। मैं न रहूं तो पूरे घर में अंशु के साथ खेलते-कूदते फिरते हैं, लेकिन मुझे देखते ही सहम कर दूर जा खड़े होते हैं। गुड्डू तो अभी छोटा है, खास कर सुमन और विनय। मैं अच्छी तरह समझती हूं, मेरे प्रति इनके दिल में डर का कारण! मम्मी और उषा दीदी मेरे बारे में इनके सामने क्या कुछ न कहती होंगी! गुड्डू तो अभी छोटा है, उनकी बातों को पूरी तरह समझ नहीं पाता। कल को थोड़ा समझदार होने पर वह भी…और अंशुल? क्या उसका मम्मी की तरफ़ इतना जाना-आना ठीक था? क्या कल को वह भी…?

मैंने बैट्री का सेल लाकर रेल के इंजन में डाल दिया और रेल फिर से चलने लगी। बच्चे खेल में लग गये और देर तक खड़ी मैं उनको खेल में व्यस्त देखती रही। फिर चौके में आकर मैंने नौकरानी को छुट्टी दी और उसे शाम को जल्दी आने को कहा, प्लेटों का पोंछा किया, टेबिल पर बर्तन लगाये, और वहीं बैठ गयी। उसी समय दूसरे बच्चे चले गये और अंशुल मेरे पास आ गया।

एकाएक मुझे याद आया, मैंने आज सुबह की चाय भी नहीं पी थी।

"अंशु बेटा—जाओ…डैडी से कहना खाना खा लो।" मैंने अंशुल को इशारों से और बोली से समझाया। अंशुल अपने छोटे-छोटे कदम उठाता, झूलता हुआ, "डैडी, डैडी" कहता चला था। उस कुर्सी की पुश्त

थामे जिस पर राजू बैठते थे, मैं उनका इन्तजार करती रही थी। फिर थोड़ी देर बाद अंशुल की बेतरह रोने की आवाज़ सुनायी दी थी।

—"(गाली देते हुए) मरने भी नहीं देते!" राजू की आवाज़ थी! उसके बाद उनके चप्पलों सहित घिसटते कदम, बाहर के दरवाज़े का खुलना, फिर ज़ोर की आवाज़ से बन्द हो जाना। अंशुल वहीं कमरे में बराबर रोये जा रहा था।

मैं लपक कर अन्दर गयी, और अंशुल को गोद में उठा लिया। उसे चुमकारते हुए मैं ड्राइंग-रूम की खिड़की तक आयी और झांक कर बाहर देखा—राजू लड़खड़ाते कदमों से मम्मी के घर की ओर जा रहे थे।

तभी टेलीफ़ोन की घण्टी बज उठी। मैंने रिसीवर उठाकर डिस्कनेक्ट कर दिया था।

बहुत रात गये राजू वापस आये थे। बिस्तर पर लेटे-लेटे ही मैंने उनके लड़खड़ाते कदमों की आवाज़ सुनी थी। उस समय पूरे घर में अंधेरा था, केवल बरामदे के आख़िरी सिरे पर लगा वह बल्ब जल रहा था, जिसकी सारी रोशनी आंगन में लगे घने नीम की शाख़ा में ही उलझ कर रह जाती है। अन्दर कमरे का कूलर बन्द था, छत का पंखा चल रहा था और दर-वाज़े के दोनों पट खुले थे। राजू बेड-रूम में नहीं आये, वहीं बाहर ड्राइंग-रूम में रुक गये थे। ख़ामोशी मे माचिस के सरसराकर जलने की आवाज़ें और अंधेरे के बीच तीली की डूबती-उभरती रोशनी, मैं बिस्तर पर ही लेटी सुनती और देखती रही थी। मेरे जागते तक राजू सिगरेट सुलगा चुके थे।

फिर मेरी आंख राजू के कूल्हने, कराहने से खुली थी। ड्राइंग-रूम से उनकी ऐसी आवाज़ें आ रही थी, जैसे बहुत तेज़ बुख़ार में लोग बड़बड़ाने लगते हैं। लगभग सवेरा ही हो चुका था और रोशनी फैल रही थी। मैं कुछ देर लेटे-लेटे उनकी आवाज़ें सुनती रही, फिर उठ कर ड्राइंग-रूम में झांक कर देखा। राजू दीवान पर लेटे हुए थे और उनका पूरा शरीर ऐसे कांप रहा था जैसे बहुत ठण्ड लग रही हो। साथ ही साथ उनके मुंह से आवाज़ें भी निकल रही थीं।

"मार डाला," वह घुटी-घुटी आवाज़ में कह रहे थे, "ब

डाला। छोड़ दो, मुझे छोड़ दो, मैं खून कर दूंगा। अलग हट जाओ!" और उनका शरीर थर-थर कांप रहा था। मैं अंदर से कम्बल लेकर आयी और उनको उढ़ाकर वहीं उनके पास बैठ गयी।

"कौन है?" उन्होंने आंखें खोलकर मुझे देखा, "अरे हट जाओ। अरे मुझे मर ही जाने दो। मुझे मार डालो।" उनकी आवाज़ और तेज़ हो गई थी, "मुझे एक ही बार में खतम कर दो, जहर दे दो, फिर सुकून से रहो! इस तरह पल-पल मुझे तरसा कर क्यों मारते हो? अरे मुझे मार डालो। मम्मी···"

फिर नौकरानी के आने पर मम्मी को पता चला था और वह आ गयीं। थर्मामीटर लगाने से पता चला राजू को तेज़ बुखार था। जब वह मम्मी की गोद में सर रख कर फूट-फूट कर रो रहे थे और मम्मी प्यार से उनका सर सहला रही थीं, उसी समय डाक्टर आ गया था। सुनील जीजा जी शायद मम्मी के कहने पर डाक्टर को लाये थे, और मुझे फीस भी नहीं देने दी थी। डाक्टर को वापस छोड़कर फिर वही दवाएं भी लेते आये थे। उस समय मम्मी चली गयी थीं इसलिए मेरे ज़ोर देने पर उन्होंने पैसे ले लिये थे।

दिन के दस बजे के बाद राजू को चुप्पी लग गयी और वह कम्बल में मुंह ढांके बिल्कुल चुपचाप पड़े रहे। मेरे हाथों उन्होंने दवा भी नहीं ली थी और न ही कुछ खाया-पिया था। फिर मम्मी ही उनके लिए बाज़ार से सेब लेकर आयी थी, उन्हें काटा और राजू को अपने हाथों फांक-फांक खिलाती रहीं। अंशुल पहले तो दूर से राजू को बिस्तर पर लेटा देखता रहा। "डैडी मारता", जब मैंने उससे कहा था कि बेटा डैडी की तबीयत का पूछो तो उसने जवाब दिया। राजू की पिछली रात वाली मार शायद वह नहीं भूल पाया था। फिर थोड़ी देर बाद वह उनके पास जाकर खड़ा हो गया और दादी के कहने पर राजू के हाथ-पैर भी दाबने लगा था और इस पर राजू ने अपने पैर झटक कर अलग कर लिये।

"तुम उधर ही चलो—" शाम के समय रसोई में मैंने मम्मी की आवाज़ सुनी थी—"हम इधर तो रह नहीं सकते, तुम भी उधर उषा की तरफ ही चलो···" वह राजू से कह रही थीं। "यहां तो न कोई मरे का,

न जिये का, दवा भी तुम्हें कौन पिलायेगा ?"

मेरे काम करते हाथ एकदम सुन्न हो गये थे। जवाब में राजू ने क्या कहा, मैं बहुत कान लगाने पर भी नहीं सुन पायी थी। बस उनकी बड़-बड़ाती-सी आवाज़ मेरे कानों तक आयी और फिर मम्मी उठकर चली गयी थीं। "अगर चाहो तो आ जाना, नहीं तो फिर-फिर हम ही आयेंगे! संतान तो तुम हमारी हो ना, थोड़ा अपमान और सही।" चलते-चलते उनके कहे हुए वाक्य थे।

उस रात फिर राजू ने मेरे हाथ से दवा पी ली और अंशुल को अपने पेट पर बिठा कर उसके साथ खेलते रहे थे। मुझसे कोई बात उन्होंने नहीं की। उस समय तक उनका बुखार उतर चुका था और कम्बल फेंककर वह घर में घूमने-फिरने भी लगे थे। लेकिन न मैंने उनसे कोई बात पूछी, न उन्होंने जवाब दिया।

—"सुनो राजू"—जब ड्राइंग-रूम में अंधेरा करके वह वहीं सोने लगे तो मैंने कहा था। एक पल को अंधेरा ही रहा था, फिर उन्होंने बिना कोई जवाब दिये लाइट्स ऑन कर दी थीं।—"मैं पूना जाना चाहती हूं।" मैंने कहा था।

थोड़ी देर चुप्पी रही थी।

"कल ही," मैंने अपनी आवाज़ ऊंची करते हुए कहा था—"मैं और अंशुल।"

राजू का पूरी ताकत से उठा हाथ मेरे मुंह पर पर पड़ा था। पहला, फिर दूसरा, फिर तीसरा। वह पूरी ताकत से मार रहे थे और उनके मुंह से गालियां ही गालियां निकल रही थीं। उन्होंने गरेबान में हाथ डालकर मेरा ब्लाउज़ फाड़ डाला था और लात मार कर दीवान के पास बिछी टेबिल को गिरा दिया था। टेबल पर रखी दवा की शीशियां और दूसरा सामान आवाज़ें करता हुआ गिरा और अन्दर बेड-रूम में सो रहा अंशुल जाग गया। उधर अंशुल रो रहा था, इधर राजू चिल्ला रहे थे।

"पति और यार में कुछ अन्तर होता है, कमीनी! तू [illegible] है, इतनी आसानी से छुटकारा मिल जायेगा? तुम्हें [illegible] खरीद कर रख सकता था। मुझे इस तरह मिटा के—

की तरह वह फिर से टूट पड़े थे। मुझे अपने कपड़े फटने-चिरने की आवाज़ें आती रहीं और मैंने भी हाथ डालकर उनका गरेबान फाड़ डाला था। उनका माथा मेरे होठों से टकराया था और मेरा होंठ फट गया था, खून बहने लगा था। हम दोनों लड़ते रहे थे, लड़ते रहे थे, और फिर···

मैंने राजू को बाहों में कस कर भींच लिया था। मेरी उंगलियां उनकी पीठ को सहलाने लगीं, उनकी सांसें मुझे अपने में घुलती लगी थीं—उनकी जीभ में सिगरेटों की मीठी कड़वाहट और शरीर से आती पसीने की हल्की-सी महक—राजू के पसीने की···आकाश में तैरता चांद···नदी में चलता शिकारा···फूल···हवा में डोलते बादल···चहचहाते पक्षी···बचपन से लेकर आज तक जो कुछ मैंने दिल से चाहा था, जो कुछ मांगा था, सब एक दूसरे में घुल-मिल कर मेरे सामने आ गये थे, मेरा शरीर किसी धनुप के समान हो गया था। आस-पास का सब पानी की तरह था और मैं उसमें डूबती जा रही थी। मैं और राजू किसी गहरी अंधेरी गुफा में पहुंच गये थे—ऐसी गुफा जिसकी तलाश हम दोनों को थी, जिसके दहाने पर ही हम एक-दूसरे से मिले थे। जिसमें हम दोनों में से कोई भी अकेला नहीं जा सकता था। जाने कितने समय भटकने के बाद हमें यह गुफा मिली थी। हम दोनों साथ थे और हमारे साथ था इस गुफा को अन्दर से देखने और जाने का जुनून—जाने अन्दर क्या कुछ था ? अंधेरा, सीलन, काई, अज़दहे, सांप···?पता नहीं। हम दोनों साथ-साथ बढ़े जा रहे थे क्योंकि वापसी का रास्ता गुफा के धंस जाने से बन्द हो गया था और हम सिर्फ आगे की ओर ही बढ़ सकते थे। यह गुफा कहीं आगे भी धंस कर बन्द हुई मिल सकती थी···क्या पता। सिर्फ इस उम्मीद पर कि ऐसा न होगा···हम यहां से बचकर बाहर निकल पायेंगे···गुफा को देखकर, जान कर · बाहर··हम बढ़े जा रहे थे, बढ़े जा रहे थे।

राजू थक कर दीवान पर ही गिर गये थे। अंशुल रोते-रोते चुप हो चुका था।

छः

घर में एक खास तरह की स्थिति पैदा हो गयी थी। जो कुछ हुआ था या जो कुछ हो रहा था, वह राजू के अस्तित्व पर एक काली गहरी परछाईं की तरह डोलता रहता—अंधेरी परछाईं, जो जगह-जगह से टूटी हुई हो, जिसमें रोशनी के धब्बे हों, और जिन धब्बों में रह-रह कर अंधेरे के पीछे छुपी हुई चीज़ें नजर आ जाती हों। फिर न जाने कितने दूसरे साये भी देखते ही देखते उनके आस-पास घिर आये थे। साये सब ज्यों के त्यों उन पर मंडराते रहते, बस कभी कोई ज़्यादा गहरा हो जाता, कभी कोई।

उस रात के बाद से कार वहीं खड़ी रही, जहां रिज़्वी उसे छोड़कर गया था। धीरे-धीरे उसके एक पिछले टायर की हवा निकल गयी और पूरी बॉडी पर धूल की तहें जम गयी थीं। उसे किसी ने छुआ तक नहीं था। फिर एक दिन राजू किसी कबाड़ी को लेकर आये थे—मैं ड्राइंग-रूम की खिड़की से छुपकर देखती रही।

"कितने दोगे ?" राजू ने पूछा था। वह अपना दांत तिनके से कुरेद रहे थे और उनका बांया पैर हिल रहा था। कबाड़ी ने कुछ पैसे बताये थे, लेकर आया था, राजू को दिये थे और कार का पहिया बदल कर स्टार्ट करके ले गया था। इस बीच उन्होंने न कभी रिज़्वी का ज़िक्र निकाला न उस रात को लेकर कोई बात की।

इधर अब घर में रोज़ का खर्चा भी पहाड़ होने लगा था। बैंक एकाउंट तो कब का खत्म हो ही चुका था, अब घर में बेचने के लिये भी ज़्यादा कुछ नहीं था। कुछ ही दिनों में हमारे घर में रखा हुआ टेलिफोन अजीब लगने लगा। घर की नौकरानी, धोबी, रोज़ की सब्जी-तरकारी तक की मुश्किल होने लगी थी। घर के पास वाले बनिये के यहां से कुछ दिनों तक तो खाना पकाने का सामान उधार ही आता रहा, फिर उसने भी हर चीज़ पर—"खत्म हो गयी" कहलाना शुरू कर दिया था। राजू ने क्योंकि

घर से निकलना बिल्कुल ही वन्द कर दिया था, इसलिए सब बातें चाहे-अनचाहे उनके कानों में भी पड़ती रहतीं।

राजू हर रोज सवेरे स्नान करते, सफेद मलमल का कुर्ता और लट्ठे का पाजामा पहनते, अगरबत्तियां जलाते और लक्ष्मीजी की मूर्ति के सामने सर झुकाकर बैठ जाते।

"बहुत वेकदरी की है यार"—वह कहने लगे थे—"पैसा लुटाने के लिए नहीं होता। जो खोता है वही जानता है।"

उन्होंने भी मज़बूर होकर अपने खर्चे कम करने की कोशिश की थी। उनकी सिगरेट का ब्रांड बदल गया था और वह अब सस्ती सिगरेट पीने लगे थे। घर में चाय भी अब कम ही बनने लगी थी। फिर कहीं से उन्हें शतरंज का चस्का लग गया था। 'रहमत दादा' करके कोई बड़े मियां थे, जो रोज़ घर पर आ धमकते और उनके साथ दिन-भर राजू शतरंज की बिसात बिछाये बैठे रहते। अगर कोई और राजू को पूछता घर पर आता तो वह कहला देते, नहीं हैं, लेकिन रहमत दादा की वह खुद ही प्रतीक्षा में बैठे रहते। मम्मी की दूकानों में एक चाय की दूकान थी। वहीं से तार के छीके में चाय के गिलास आते रहते और कागज के गन्दे टुकड़ों में लिपटे पान के बीड़े। रहमत दादा उर्दू के शेर सुनाते और राजू 'वाह-वाह' करते, सुबह से शाम कर देते।

"तुम समझती नहीं हो!" वह मुझसे कहते—"ये रहमत दादा कितना बड़ा आदमी था। पहले इसकी देवड़ी पर हाथी झूमते थे, और आज"—कहते हुए कभी-कभी राजू की आंखों में, आंसू तक भर आते—"आज मुकद्दर के हाथों इस गत को पहुंचा है कि सर छुपाने को झोपड़ा नसीब नहीं। और शायरी! साले को दीवान के दीवान रटे पड़े हैं।"

दिन-भर राजू रहमत दादा के साथ बैठे रहते और बीच-बीच में शतरंज छोड़कर अन्दर आ-आकर झांक जाते।

इधर मम्मी और हमारे घर के बीच लगातार बारूद बिछती रही थी। मम्मी और दीदी ने अब हमारी ओर आना बिल्कुल ही बन्द कर दिया था। सिर्फ राजू ही कभी-कभी उनकी ओर हो आते थे।

"बाई"—उस दिन घर की नौकरानी काम करते-करते बोली थी—

"सबको आपके बारे में पता नहीं कौन बताता रहता है। आज यह जो सामने सरदार जी रहते हैं, उनकी माई पता नहीं आपको क्या-क्या कह रही थीं।"

"क्या कह रही थीं ?" मैंने अपनी आवाज़ से गुस्सा न छलकने देने का प्रयत्न किया था। पूछने के पीछे, वैसे कुछ जानने की उत्सुकता से अधिक गुस्सा ही था।

"कह रही थीं"—नौकरानी की आवाज़ एकदम काना-फूसी वाली हो गयी, और वह हाथ का काम छोड़कर मेरे पास आ गयी—"कि आपने साब पर टोना किया हुआ है—बाई जी (राजू की मम्मी) से उनका मन बिगाड़ने को। इसी से साब को कुछ असर भी हो गया है जो वह कहीं जाते-आते नहीं, बस आपसे ही लगे बैठे रहते हैं।"

मैं सुनती तो सब-कुछ रही थी लेकिन गुस्से से आप ही आप मेरा सारा बदन जलने लगा। और कहनेवाले को भी मैं अच्छी तरह समझ गयी थी! सरदारजी की तरफ मम्मी का ही बहुत आना-जाना था। यह सब बातें उन्हीं से वहां तक पहुंच सकती थीं।

"और"—नौकरानी ने अपना मुंह मेरे कान के बिल्कुल पास लाते हुए कहा—"यह कि साब का दीवालिया निकलनेवाला है।"

कम-से-कम एक बात तो कहने वाले ने सच कही थी! बस इसी तरह की बातें मम्मी अब लोगों के सामने करती रहती थीं।

मेरा अधिक समय अंशुल और किताबों के सहारे ही बीतने लगा था। कहीं भी आना-जाना लगभग बन्द हो गया था और दिन-रात रसोई से बैड-रूम तक सीमित हो गये थे। यह अच्छा हुआ कि घर में बहुत-सी किताबें थीं, जिनको पढ़ने में मेरा समय बीत जाता था। घर में किताबें थीं इसलिए कि एक समय राजू को किताबें पढ़ने और खरीदने का भी शौक हुआ था। हमारे विवाह के कुछ ही दिन बाद की बात थी। जब चीफ-इंजीनियर माथुर साहब ने हम लोगों को खाने पर बुलाया था। राजू के पिता से खास संबंध होने के कारण वह उनका विशेषकर खयाल रखते थे। खाना खाने से पहले माथुर साहब और उनकी पत्नी हमें उनकी स्टडी-रूम में लेकर गये थे। बहुत ही अच्छी तरह से जमाई गयी किताबें और साफ-सुथ —

ा कमरा। चारों ओर बुक-शेल्फ ही बुक-शेल्फ थे।

"बस यार, वैसी ही एक लाइब्रेरी चाहिए।" माथुर साहब के यहां से वापसी पर रास्ते में ही राजू ने कहा था, "चारों तरफ किताबें ही किताबें हों—फ्लोर पर एक फुट मोटा सुर्ख कार्पेट, थिक, रेड-हैवी कर्टेन्स, एक बहुत बड़ी-सी महूगनी की हैवी-राइटिंग टेबिल, ब्लैक—एकदम ब्लैक, टेपिस्ट्री की ही रिवाल्विंग चेयर—ऐसी की उस पर बैठ कर कुछ पढ़ने-लिखने को दिल चाहे और साथ ही में वह होती है ना—लम्बी-सी स्ट्रेचिंग चेयर, खूब मोटे-मोटे कुशंस की·· आराम से पैर फैलाकर, लेटकर पढ़ने को। और साथ में एक भारी-सा बहुत कीमती पेडेस्टल लैम्प—बहुत बड़ा-सा, जिसे मूव करके कमरे में कहीं भी ले जाया जा सके··" फिर उन्होंने कार के विंड-स्क्रीन से नजरें उठा कर मेरी ओर देखते हुए कहा था—"लो! मैं सबसे जरूरी चीज तो भूला ही जा रहा था···एक बहुत-बहुत चौड़ी, बहुत-बहुत नर्म, बहुत बड़ी-सी मसहरी···क्यों?"

बहरहाल अगले दिन से राजू ने किताबें खरीदना शुरू कर दिया था।

"यार, मैं कितना पढ़ना चाहता था"—वह नयी खरीदी किताबों के ढेर की ओर थकी-थकी नजरों से देखते हुए कहते—"बापरे, मैं मर जाऊंगा तो काम-काज का क्या होगा? दिल के दौरे के दो झटके सह चुका हूं, तीसरे में नहीं बचूंगा! सब चौपट कर दिया।"

लाइब्रेरी पूरी तरह से बनाने या किताबें पढ़ने की फुर्सत राजू को कभी नहीं मिल पायी थी। सिर्फ कमरे की दीवारों पर पेंट हुआ था और उसी रंग के पर्दे आज भी कमरे में लटक रहे थे। किताबें मेरे हिस्से में आयी थीं। जब राजू रहमत दादा के साथ शतरंज और शेर-ओ-शायरी में डूबे रहते, तो मैं पढ़ती रहती।

समय के साथ-साथ राजू पर मंडराते साये गहरे होते गये थे। धीरे धीरे उन सायों के बीच वह एक-दूसरे ही आदमी लगने लगे थे।

"ऐसे कितने दिन तक चलेगा?"—उनको घर में ही बन्द देखते-देख एक दिन मैंने पूछा था। उस समय राजू बिस्तर पर लेटे कोई पुराना मैग जीन पढ़ रहे थे।

"क्या?"—उन्होंने बैठकर मैगजीन सामने की टेबिल पर डालते हु

पूछा था, जैसे मेरी बात समझ न पाये हों।

"घर में आटा-दाल तक नहीं है"—मैंने अपनी बात दोहराते हुए आगे कहा—"नौकरानी को दो महीने से पैसे नहीं दिये हैं, कपड़े सारे घर में घूल रहे हैं, क्योंकि धोबी को पिछले पैसे नहीं मिले, इस महीने दूधवाले को भी देना मुश्किल हो रहा है। आखिर ऐसा कब तक चलेगा? क्या आपके इस तरह घर में बन्द हो जाने से कुछ होने की आशा है? कोई हल निकलता दिखता है?"

राजू मसहरी पर चुप बैठे अपने पैर तेजी से हिलाते रहे थे।

"फिर मैं क्या करूं?" कुछ देर की चुप्पी के बाद उन्होंने तेज़ स्वर में कहा था—"तुम क्या समझती हो मैं खुद बहुत आराम से हूं? घर में इस तरह बन्द होकर बैठने से मुझे कुछ सुख मिलता है? तुम्हारा क्या जायेगा, लोग हथकड़ियां तो मेरे लगायेंगे, जेल तो मुझे जाना पड़ेगा! लोगों के पैर पकड़ कर खुशामद तो मुझे करनी पड़ेगी! तुम क्या चाहती हो, बताओ?"

"इसका मतलब है, आपके घर में बन्द रहने और हमारे भूखे मरने से यह सब-कुछ नहीं होगा?" मेरी आवाज़ भी ऊंची हो गयी थी।

"यह सब तुम्हारी वजह से है!"—उनकी आवाज़ गुस्से में और ऊंची हो गयी थी—"सिर्फ तुम्हारी वजह से!" लाखों बार समझाया, हाथ जोड़-जोड़ कर बताया कि बाबा, ज़रा मम्मी का खास खयाल रखा करो, उनकी दो बातें सुनकर भी चुप रह जाया करो, मत जवाब दिया करो। चलो वह तो बुढ़िया हैं, सठिया गयी हैं, पागल हो गयी हैं, तुम तो समझदार हो। आज अगर उन्होंने हाथ नहीं हटाये होते तो यह दिन देखना नहीं नसीब होता। सिर्फ तुम्हारी ही वजह से है। मैं आज अकेला हो जाऊं तो मज़ाल है जो वह मुझे इस दशा में देख लें। मुझसे भी छुप-छुपाकर उन्होंने जाने कितना ज़मा किया होगा। और मुझसे खुद कह भी चुकी हैं कि सब-कुछ तुम्हारा है, लेकिन जो थोड़ा-सा बच गया है, उसे भी हम अपनी आंखों के सामने मिटते नहीं देख सकते। तुम्हारी देवी के होते कुछ नहीं बच सकता।" राजू के स्वर में, कहते हुए एक प्रकार का गर्व-सा झलका था।

"तो फिर ठीक है, मैं चली जाती हूं", मैं उठकर खड़ी हो गयी थी।

"कहां ?" राजू एक पल को सकपकाये थे।

"पूना—अपने घर"—मैंने फैसले के अन्दाज में कहा था।

उसी शाम उषा दीदी के यहां बहुत-से मेहमान आये थे। गड्डू की वर्ष-गांठ मनायी जा रही थी। मैंने अंशुल को कपड़े बदला कर तैयार कर दिया था और राजू उसे लेकर चले गये थे। पूरे घर में मैं अकेली रह गयी थी। दूसरी तरफ से मेहमानों की चहल-पहल, हंसने-बोलने की आवाजें आती रहीं और मैं सोचती रही थी—उस दिन के बारे में—कार वाली घटना के कोई पन्द्रह दिन बाद वाले दिन के बारे में···

उन बीते पन्द्रह दिनों में हर दिन यह लगा था जैसे वह रात रोज़ पुरानी होती जा रही है और थोड़े दिनों में सब-कुछ कहीं दिमाग़ के उन खानों में रख जायेगा जहां बेमतलब बातें जमा होती रहती हैं, और बहुत समय बीतने के बाद कभी-कभार परेशान करती हैं। फिर राजू के लिए फिलहाल दूसरी भी कितनी ही उलझनें थीं। राजू के करीबी दोस्त नारायण ने इस बीच कई बार राजू को समझाया था और अन्त में राजू इस बात पर तैयार हो गये कि नारायण, मार्केटवालों से बातें करे। जिसका जितना निकलता था राजू को देने से इंकार नहीं था, लेकिन अभी उनके पास कुछ नहीं था।

"नहीं तो नीलाम भी करेंगे तो क्या होगा ?" उन्होंने नारायण से कहा था—"हमारे पास है क्या ? जेल भी भिजवा देंगे तो उससे उनका पैसा तो मिलने से रहा ! थोड़े दिन चुप बैठ जायेंगे तो हो भी सकता है, कहीं से कुछ बात बन जाये और"—उन्होंने एकदम दोनों हाथ उठाते हुए कहा था—"बता देना, यह घर जिसमें हम रह रहे हैं, मम्मी के नाम है। इसे नीलाम करा देने के ख्वाब में न रहें।"

"कार बेचकर कुछ पैसा क्यों नहीं उगाहते ? कम-से-कम जो काम अधूरे पड़े हैं, जहां जमानती पैसा अटका हुआ है, उन्हें ही पूरा करो। गाड़ी चले तो।" नारायण ने समझाते से स्वर में कहा था।

तब तक कार कबाड़ी नहीं ले गया था।

"तुम सुनो तो यार !" राजू एकदम झल्ला गये थे—"जो कह रहे हैं, वह कर दो। अब कुछ नहीं करना हमें, तबीयत ही हट गयी। कोई दूसरा

काम देखेंगे।"

नारायण के चले जाने के बाद राजू देर तक चुपचाप बैठे रहे। माचिस की तीली से कान कुरेदते ठण्डी सांसें लेते रहे, फिर कुछ पुरानी फाइलें निकालकर उनको उलट-पलट करते रहे। रात तक उनकी मेरी कोई बात नहीं हुई थी।

"तुम भी सोचती होगी, कहां आ फंसी!"—रात को उन्होंने मेरे पास बैठते हुए कहा था—"सपने में भी नहीं सोचा होगा कि यह सब हो जायेगा।"

वह देर तक दोनों हाथों में सर दिये बैठे रहे थे। मैं चुप रही थी। उनको देर तक गुमसुम देखकर लगा, जैसे वह किसी दुविधा में पड़े हों। फिर उन्होंने कबर्ड खोलकर व्हिस्की की बोतल निकाली थी जिसकी तह में थोड़ी-सी बची हुई थी।

"पियोगी?" उन्होंने पूछा था। मेरे इंकार पर बोतल मुंह से लगाकर वह दो घूंट वैसे ही चढ़ा गये। बड़ी मुश्किल से उन्होंने उबकाई को रोका और फिर वहीं पलंग पर बैठकर देर तक खांसते रहे, "बहुत तेज है।" हंसने की कोशिश करते हुए उन्होंने बोतल की ओर इशारा करते हुए कहा। फिर लपक कर गिलास और पानी का जग उठा लाये और व्हिस्की में बहुत-सा पानी मिलाकर एक घूंट लिया। "अब ठीक है।"—कहते हुए भी उनका मुंह बन गया और फुरेरी आ गयी।

राजू शराब बहुत-कम पीते थे, वह भी कभी-कभी। ज्यादा शराब तो वह कभी भी पी ही नहीं पाते थे, थोड़ी-सी पीकर भी उनके हाथ-पांव और फिर दिमाग बेकाबू हो जाता था। मैंने उन्हें कभी-कभार शौक़िया ही पीते देखा था।

"अरे यार हटाओ, दिन-रात किन चक्करों में दिमाग़ उलझा हुआ है"—उन्होंने हाथ का गिलास रखते हुए कहा था—"यार माफ़ कर देना, मैं तो बिल्कुल निकम्मा और बरबाद हो गया हूं। क्या-क्या प्लान थे। तुम्हारे लिए क्या-क्या सोचा था। सोचा था, हम दोनों सारी दुनिया का चक्कर लगायेंगे—लंदन, पेरिस, न्यूयार्क, सब जगह साथ घूमेंगे। तालाब के किनारे जो बिल्कुल अकेली पहाड़ी है, उसको खरीद कर वहां रहने के

लिए मकान बनेगा और उसके आस-पास दूर-दूर तक फैला हुआ बाग। फिर शाम को सूरज डूबा करेगा और हम सब-तुम, मैं और हमारे बहुत सारे बच्चे वहां दरख्तों के झुंड में खड़े होकर डूबते सूरज को पानी में घुल कर रंगों में बदलता देखा करेंगे। हमारे क़दमों के नीचे डेढ़-डेढ़ इंच दूब की ही लॉन होगी और चारों तरफ धीमे-धीमे बहती हवा। हम लोगों से थोड़ी दूर पर अंधेरे में खड़ी बच्चों की मामा इन्तजार कर रही होगी। सूरज डूब जायेगा, मामा बच्चों को लेकर उनके कमरों की ओर चली जायेगी और हम लॉन पर पड़ी आराम कुर्सियों में फैल जायेंगे। फिर सफ़ेद कपड़े पहने ट्राली धकाता हमारा कुक-कम-बार-मैन आयेगा। "नाइट"--हम, उसे "नाइट" कहा करेंगे। उसका नाम कुछ भी हो, हमारे यहां वह "नाइट" कहलायेगा। जंगें लड़ा हुआ, बहादुर, पका हुआ आदमी —"नाइट" राजू कहे जा रहे थे और अपनी आवाज़ में बहे जा रहे थे।

उन्होंने बची हुई शराब में पानी मिलाकर एक बड़ा-सा घूंट लिया था, फिर दूसरा। गिलास खाली करके एकदम वह मेरे सीने से आ लगे थे। इस समय उनकी आंखों में आंसू झिलमिला रहे थे।—"मुझे माफ कर दो।" वह कह रहे थे—"मैंने तुमको बहुत दुख दिये हैं। मुझे सब नज़र आता है, सब देख रहा हूं। तुम्हारा शरीर देखो, क्या से क्या हो गया। तुम पहले क्या थीं, अब क्या हो गयीं। और सब-कुछ मेरी वजह से हुआ है। माफ कर दो यार—नहीं, कह दो कि माफ कर दिया। तुम नहीं समझती, बिना तुम्हारे ज़िन्दगी का न पहले कुछ अर्थ था, न अब है। तुम समझ रही हो, मेरी बात ? पहले जैसे एक बाग था जिसमें फूल नहीं थे और अब !" उन्होंने कड़वी-सी हंसी के साथ कहा था—"अब फूल खिले तो साला बाग़ ही नहीं रहा। कह दो कि तुमने माफ़ कर दिया।"

फिर उन्होंने मेरा सिर तकिये पर रख दिया और आगे बढ़कर लाइट ऑन कर दी थी। मैंने चाहा ऊपर चादर खींच लूं, तो उन्होंने आगे बढ़कर मेरे हाथ थाम लिये थे।—"ऐसे ही लेटी रहो, बिल्कुल ऐसी ही लेटी रहो।" वह धीरे-धीरे मेरे पांव दाबने लगे थे।—"नहीं हाथ जहां रुका है, वहीं रहने दो, नहीं तो सब चौपट हो जायेगा।"—उन्होंने कहा था। वह मेरे पैर दाबते रहे थे, मेरी बाहें, मेरे शरीर के पोर-पोर को सहलाते रहे

और मैं उनकी आंखों में खोयी रही थी। उनकी आंखों में आया यह भाव अलग था। अभी तक कभी भी मैंने उनकी आंखों में यह खुशी और शांति नहीं देखी थी—कहीं बहुत गहराई तक केवल खुशी।

फिर राजू मेरी छातियों के बीच सर रखकर कहीं खो गये थे। थोड़ी देर तक सब चुप और ठहरा रहा था।

"राजू।" मुझे अपनी आवाज़ भी कहीं दूर से आती लगी थी। कहीं दूर पहाड़ों में गूंजकर वापस आती।—"रुको राजू, अंशु जाग जायेगा।"

"जाग जाने दो"—उनकी आवाज़ में ठहराव था। "सारी दुनिया को जाग जाने दो। शहर के सब से ऊंची मीनार पर चलो, अंशु क्या देखेगा? यही ना कि उसकी मां और उसका बाप···देखने दो। मां और बाप ही तो हैं, कोई और तो···"

कभी-कभी शायद हर के साथ ऐसा होता है। शब्द विचारों से आगे निकल जाते हैं, और फिर उनको कोई नया अर्थ देने के असफल प्रयास में हम खुद को लहूलुहान कर लेते हैं।

राजू का शरीर एक पल को निर्जीव हुआ, और फिर जब दोबारा उसमें जान आयी थी तो वह एक दूसरा राजू था। वह मैं थी, राजू थे—स्त्री-पुरुष। यहां से एक दूसरी ही रात शुरू हो गयी थी—वैसी जो अभी तक हमारे जीवन को जगह-जगह टेके देती रही थी। जब भी लगता था, जीवन में कहीं कुछ झोल आता जा रहा है या सब-कुछ बेमतलब होता जा रहा है, ऐसी कोई एक रात आनेवाले कई दिनों में अर्थ ढूंढ़ने की शक्ति दे जाती थी। सब-कुछ फिर से नया हो जाता था और लगता था आगे भी कुछ है। रात का यह भाग उन रातों का था जो न केवल शरीर के रंगो-रेशे से लिपटी बेचैनी और पेशियों में खून के साथ घुलकर दौड़ते पारे को एक झटके में नीचे ले आती है, बल्कि बीते दिनों की एक-एक घटना को भी नया अर्थ दे जाती है। लेकिन बात यहीं नहीं रुकी थी। थोड़ी देर हम एक-दूसरे के लिए केवल स्त्री-पुरुष रहे, दो शरीर मात्र, फिर राजू मुझे वहीं छोड़ किसी दूसरी दिशा में निकल गये थे। उनकी सारी कोमलता एक-एक बीतते पल के साथ बर्बरता में बदलती गयी थी। उनके ग खिचाव आ गया था और हाथ-पैरों में मसल डालने वाली शक्ति

एकदम अजनबी हो गये थे। लगा था, वह मुझे चीर-फाड़ देना चाहते हों। अपने हाथों अपने शरीर से टुकड़े-टुकड़े कर देना चाहते हों। "राजू"—मैं चिल्लाई थी। उनके दांत मुझे अपनी छातियों के अन्दर तक उतरते लगे थे। मैं फिर से चिल्लाई थी—लगा था मेरा सारा अस्तित्व फड़फड़ाकर हलक में आ अटका हो। राजू ने कुछ नहीं सुना था। मैं फूट-फूट कर रोने लगी थी और मेरी हिचकियां लगातार ऊंची आवाज़ में निकल रही थीं। राजू पर कोई असर नहीं हुआ था। वह उसी तरह मुझे तोड़-मरोड़ रहे थे। मेरा सर जाने कब तकिये से हट कर मसहरी की पट्टी पर आ गया था। "मैं मर जाऊंगी"—मैंने पूरी ताकत से चिल्ला कर कहा था। उनके सुनने या देखने की क्षमता जैसे खत्म हो गयी थी और सारी शक्ति शरीर में आ गयी थी। फिर एक बार मेरा सर जोर से मसहरी की पट्टी से टकराया था और मैं···

मुझे होश आया तो कमरे में लाइट उसी तरह जल रही थी, मेरा सर उसी तरह मसहरी की पट्टी से नीचे लटक रहा था, लैम्प का पूरा फोकस मेरे नग्न शरीर पर था, और राजू···! राजू ने अपने शरीर को चादर से ढक लिया था और कमरे के कोने में फर्श पर दीवार से टिके बैठे थे। उनके मुंह में अध-जला सिग्रेट दबा था और आंखें मेरे शरीर पर थीं। और उन आंखों का भाव! मैंने उन आंखों में इतनी शांति, इतना सुख कम देखा था।

होश में आते ही मैं फिर बुरी तरह रोने लगी थी और जाने कितनी देर तक रोती रही थी। किसी तरह अपने को खींच कर मैंने अंशुल के बाजू में डाला था और अपना सर उसके पैरों पर रखकर घंटों आंसू बहाती रही थी। लग रहा था जैसे मेरा शरीर मनों मल्बे के नीचे दबा रहा हो और मेरी हड्डियां चूर-चूर हो गयी हों।

राजू उसी कोने में फर्श पर थोड़ी ही देर बाद पसर कर सो गये थे और कुछ ही क्षणों में उनके हल्के-हल्के खर्राटे सुनाई देने लगे थे।

जब उषा दीदी के यहां से राजू लौटे थे तो अंशुल सो चुका था। वह उसे गोद में उठा कर लाये थे।

"यार, अच्छी-खासी तुम भी चली चलतीं।"—उन्होंने अंशुल को

लिटाते हुए कहा था—"अब तुम तो।" खिसियानी मुस्कान के साथ उन्होंने मेरी ओर देखा था और वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया था।

उसी रात सोने से पहले—

"सुनो, तुम पूना का कह रही थीं ना…?"

"जी"—मैंने अपनी थकी आवाज़ में कहा था। "आप चिन्ता न करें, मैं जल्दी चली जाऊंगी।"

"लो! यह हुआ हमारी बात का मतलब। यह समझीं आप! अरे यार, तुम से तो कुछ बात करनी भी मुश्किल है"—उनके स्वर की सहजता वैसी ही बनी रही थी।

"नहीं!" मैंने करवट बदलते हुए कहा था। "फिर आप रहियेगा, मम्मी के साथ। आपकी सारी मुश्किलें दूर हो जायेंगी। और शायद मेरी भी।"

राजू थोड़ी देर को चुप रहे थे।

"अब यार"—उन्होंने विनती के स्वर में कहना शुरू किया था, "अब तुम भी नहीं समझोगी? तो कौन समझेगा? अब दिमाग़ ही तो है, और इतनी सारी परेशानियां हैं। तुम जानती हो, कभी-कभी मुंह से गलत-सलत निकल जाता है। भय्या माफ़ कर दो यार, मेरा दिमाग़, आज-कल ठीक थोड़े ही है। पता नहीं क्या-क्या ख्याल आते रहते हैं। तुम क्या समझती हो, मुझे एहसास नहीं है कि मैंने तुम्हें कितनी तकलीफ पहुंचायी है? समझो यार—सब वक्त की बात है। मेरी ज़िन्दगी में तुम दोनों के अलावा है कौन? मम्मी? उन्होंने तो अपनी चैन से गुजार ली, अब उन्हें हमारी परवा नहीं तो हम उनकी क्यों करें? लेकिन यकीन रखो, बिल्कुल यकीन रखो—तुम्हारे, और सिर्फ तुम्हारे लिए, मैं एक बार फिर से वह सब चीज़ें हासिल करके रहूंगा, जो हम से छिन गयी हैं—सब सालों, तुम्हारे कदमों में ला डालूंगा। थोड़े दिन की बात है…"

मैं चुप रही थी।

"क्यों, यकीन नहीं आता?" उन्होंने खीजी-सी आवाज़ में कहा— "मैं तुम्हारे लिए क्या नहीं कर सकता? क्या नहीं कर सकता?"

"उस बुढ़िया के यहां जाना बन्द नहीं कर सकते!" आख़िर

ह से निकल गया था।

"बस यही चाहती हो ना ?" उन्होंने पूरे विश्वास से मेरी ओर देखते
हुए कहा था, "ठीक है, मैं कसम खाता हूं जो आज के बाद उनकी तरफ
भूलकर भी जाऊं। उनकी तरफ देखूं या उनसे बात तक करूं। तुम्हारी
कसम खाता हूं। तुम्हें यों अच्छा लगता है तो यों ही सही।"

"तुम पूना का पूछ रहे थे।" थोड़ी देर बाद मैंने प्रसंग उठाया था।

"हां यार, पूना ! ऐसा करें, हम साथ ही चलते हैं। बाहर जाना मेरे
लिए भी अच्छा ही रहेगा। शायद सकून से वहीं कोई बात समझ में आ
जाये। कुछ दिन रहकर आ जायेंगे। क्यों, ठीक है ना ?"

सात

राजू पूना चलने को कह तो गये थे, लेकिन अगले दिन फिर से उस
बेचैनी ने उनको घेर लिया था। उन्हें देखकर लग रहा था उनका दिमा
कहीं उलझा हुआ है। सुबह से ही वह चुप और बेचैन रहे थे।

उस दिन घर में चीनी भी खत्म हो गयी थी। इसलिए घर में चाय
नहीं बनी थी। राजू पास के होटल पर जाकर कह आये थे और वह
एक छोकरा दो गन्दे गिलासों में चाय और कुछ मीठे बिस्कुट दे गया
चूल्हे की गैस पहले ही खत्म हो चुकी थी, इसलिए अंशुल का दूध
अंगीठी जलाकर गर्म किया था। बहुत पहले का बचा हुआ ग्लूको
आधा डब्बा मेरे हाथ आ गया था और अंशु को मैंने दूध में ग्लूकोज
कर दे दिया था। घर की नौकरानी मक्को को कुछ दिन पहले मैंने
जवाब दे दिया था। उस दिन राजू कहीं से कुछ पैसे लाये थे, उन
मक्को को दिये थे, और कहा था कि अंशुल बाबा अब खासे बड़े हो
मैं खुद घर का काम देख लिया करूंगी।

घर के कामों में राजू भी तरह-तरह से मेरा हाथ बंटाते रहते। ज़्यादा कपड़े भी अब बाज़ार में नहीं धुलाये जा सकते थे। राजू अपने कपड़े मुझे नहीं धोने देते, बल्कि कभी-कभी मेरे और अंशुल के कपड़े भी खुद ही धो डालते। बहुत जुटकर वह कपड़े धोते, उन्हें सुखाने के लिए आंगन में अलगनी पर डालते, फिर सिग्रेट मुंह में दबाये घण्टों उन पर लोहा फेरते रहते।

"क्या बुराई है ?" वह कहते—"अब तुम बिज़ी हो, बच्चे की देख-भाल, खाना-पकाना, झाड़-पोंछ, और मुझे कुछ करने को है नहीं। कम-से-कम कुछ तुम्हारा हाथ बंट जाता है और मेरा समय बीत जाता है।"

वह इन छोटे-छोटे कामों में इतने व्यस्त हो जाते कि मुझे यकीन नहीं आ पाता। हर काम बहुत सुघड़ता से किया जाता। उनके धोये कपड़ों के आगे, धोबी के धोये कपड़े मांद पड़ जाते थे। जूतों की पालिश ! रोज़ आधा घंटा जूतों पर पालिश के लिए था। तमाम जूतों की कतार को झटका जाता, क्रीम-पालिश लगायी जाती, देख-रेख की जाती। "जूतों की ज़िन्दगी बढ़ जाती है"—वह कहते और जब रहमत मियां आ जाते तो वह शतरंज पर बैठ जाते, लेकिन बीच-बीच में दौड़कर अन्दर आते रहते, मुझे देख जाते, कामों को पूछ जाते।

उस सुबह चाय-बिस्कुट के नाश्ते के थोड़ी देर बाद रहमत मियां आ धमके थे। राजू उनके आने से जैसे किसी दुविधा में फंस गये थे। थोड़ी देर सोचते रहने के बाद उन्होंने मुझसे कहा था, "यार, कह दो, घर पर नहीं हैं।"

यह पहला मौका था जब राजू ने रहमत मियां को 'ना' कहलवाया था। उनके चले जाने के बाद भी राजू देर तक गुमसुम रहे थे बेचैनी से घर में टहलते रहने के बाद उन्होंने कपड़े बदले और बाहर जाने लगे। मेरे बहुत पूछने पर उन्होंने कहा था, "यहीं, पास तक जाना है अभी आते हैं।"

दो-ढाई घंटे बाद जब राजू लौटे थे तो वह बेचैनी बड़ी हद तक कम हो गयी थी। "यार, पूना चलना है, तो ऐसा करो, आज शाम को बाज़ार चलते हैं, मम्मी और बच्चों के लिए कुछ खरीद लेंगे।"

मैं राजू की ओर देखती रह गयी थी।

"यार"—उन्होंने हंसकर कहा था, "यार, अच्छा नहीं लगता, वैसे ही खाली-पीली जाना। ठीक है ना ?"

"सुनिए, आपके पास पैसे कहां से आ गये ?" शाम को बाज़ार जाने से पहने मैंने राजू से पूछा था।

"मांगो, मिलेगा! खटखटाओ, दरवाज़ा खुलेगा!" उन्होंने छत की तरफ हाथ उठाकर कहा था और जोर से हंसे थे, "इतने दिन से प्रार्थनाएं कर रहा था, ऊंधा-सीधा हो रहा था, तुम क्या समझती हो, यूं ही फालतू में ? रहमत दादा के वकील—मांगने वाले को दुनिया वाले नहीं देते हैं।"

"किसी से उधार लिया है ?" मैंने कुछ ठहरकर फिर से पूछा था।

"अरे आ गया यार, कहीं से, छोड़ो"—राजू ने फिर से टालना चाहा था, फिर मेरी ओर देखकर कहा था, 'उधार नहीं लिए। कुछ दिन पहले नारायण फ्रिज खरीदने को कह रहा था। गर्मियां तो वैसे भी खत्म हो रही हैं, फिर हम लोग बाहर चल रहे हैं। वैसे नारायण बहुत इंकार कर र था, लेकिन ···हम जाने से पहले खुद ही फ्रिज भिजवा देंगे।"

मैंने ठंडी सांस ली थी।

अंशु भी हमारे साथ था। मकान के अगले चौराहे से हमने टैक्सी ल और बाज़ार पहुंच गये थे। बाजार में राजू बिल्कुल व्यस्त हो गये इम्पोरियम से मम्मी के लिए एक खूबसूरत बड़ा-सा पानदान खरीदा था।

"मगर, घर पर पान कौन खाता है ? मम्मी भी बस कभी-क मैंने कहना चाहा था।

"अरे, सब खाने लगेंगे यार"—राजू फौरन बोले थे। बाबा चांदी की खिलाल, कान कुरेदनी का सेट और बच्चों के लिए कपड़े अंशु के लिए चार-पांच जोड़े, और फिर मेरे लिए—मुझे मजबू उन्होंने दो साड़ियां दिलायी थीं।

"पड़ी रहेंगी"—उन्होंने कहा था।

फिर हमने कॉफी-हाऊस मे डोसे और सांभर खाये, कॉफी

"यार कुछ दिल भरा नहीं"—उन्होंने कॉफी-हाऊस में बिल

कहा था, "ऐसा करते हैं, अपन बिरला मंदिर चलते हैं, फिर वहां से घर के लिए कोई टैक्सी कर लेंगे।"

मार्केट से मंदिर तक हम लोग पैदल आये। अंशु ने भी थोड़ा रास्ता पैदल तै किया। वह राजू की उंगली पकड़े-पकड़े चल रहा था। "बेटा मंदिर में भगवान रहते हैं—बेटा भगवान से मिलेगा—बेटा भगवान से कहना हमारे डैडी पर कृपा करो—क्या कहेगा बेटा ? हमारे डैडी के सर से मुसीबतों का पहाड़ टालो।"

राजू रास्ते-भर अंशुल को समझाते रहे।

"कहते हैं, मासूम बच्चों की दुआ भगवान फौरन कबूल करते हैं" राजू ने भक्तिपूर्ण भाव से कहा था। उनकी आंखों में बला की श्रद्धा, बला का भय आ जाता था, ऐसे मौकों पर।—"शायद अंशुल की ही सुन ले भगवान"—उन्होंने फिर कहा था। उनकी आवाज़ में थोड़ा-सा कंपन था।

सड़क के किनारे एक के बाद एक मर्करी बल्ब साधे खम्भे निकलते गये। अब अंशु राजू की गोद में था और हम लोग आधी से अधिक घाटी चल गये थे। मार्केट से मंदिर के बीच सिर्फ एक घाटी का फासला है, लेकिन घाटी चढ़ते-चढ़ते ही सब-कुछ बदलने लगता है। बाज़ार की रेल-पेल से निकलकर उस ओर बढ़ते हुए धीरे-धीरे खामोशी साथ चलने लगती है और एक ख़ास कशिश—जिससे उकताकर या घबराकर या तो आदमी रास्ता बदल दे या खींचता चला जाये, खिचता चला जाय। कभी-कभी मुझे आश्चर्य होता है कि किस तरह जगह, माहौल, ऊंचाई, वीरानी, दूर-दूर तक फैले थके हुए से पत्थरों के सिलसिले, उफन कर मैदानों में दौड़ती नदियों के किनारे, या अपने आप में अकेली पहाड़ की चोटियों पर, मीनार बना देने या घण्टे की आवाज़ गूंजने से कितना कुछ बदल जाता है। वही जगहें बिल्कुल एक नया रूप धर लेती हैं, एक नये प्रकार का आकर्षण पैदा कर देती हैं। किस प्रकार इंसान अपने बीच खुद अपने से बड़ी चीज़ों का निर्माण कर लेता है, और फिर किस तरह उसकी छाया में बैठकर अपना पसीना सुखाने का जतन करता है।

अंशु मंदिर में दौड़ता रहा। हम लोगों ने लक्ष्मी के चरणों में मालाएं अर्पित की थीं। घण्टे बज रहे थे, शंख बज रहा था। राजू आंखें ब

खड़े थे। मुझे एकाएक लगा जैसे मैं बेहद थक गयी हूं।

सब तैयारी हो गयी थी। एक थरमस में कूट कर बर्फ भरा गया, बाजार से संतरे, चीकू और सेब खरीदे गये। राजू एक नयी सुराही खरीद कर लाये, उसका स्टैण्ड निकला और पानी-भरकर सुराही को बारीक मलमल के कपड़े से लपेट दिया।

"कुछ खाना साथ रख लें? अच्छा रहने दो, वहीं स्टेशन के पास क्वालिटी से ले लेंगे। तुम कहां पकाती फिरोगी?"

तैयारियां देखकर लगा था हम लोग महीनों के लिए पूना जा रहे हैं।

"बस यार, ज़िन्दगी भी साली ऐसी ही होनी चाहिये"—उन्होंने ट्रेन रवाना होने पर खिड़की के पर्दे नीचे करते हुए कहा था—"यहां से पूना तक का सफ़र। इस कम्पार्टमेंट में, तुम्हारे साथ। सारी ट्रेन में खलकत घुसती रहे, निकलती रहे, खड़ी रहे, लटकी रहे, हमारी बला से।"

राजू कभी फर्स्ट-क्लास से नीचे सफर नहीं करते थे।

"कहीं जाना है तो इसका यह मतलब तो नहीं कि ऊंट की दुम से लटक कर चले जाओ! नहीं यार, इतनी भीड़ में अपने बस का नहीं" वह कहते।

'कूपे' रिजर्व था। राजू ने एक बर्थ पर बिस्तर खोल दिया। मैं और अंशु उस पर बैठे थे। सामने की सीट पर राजू थे। प्लेटफार्म पर उन्होंने बहुत-सी पत्रिकाएं, अखबार और दो-तीन किताबें खरीदी थीं और इस समय उनके पन्ने पलट रहे थे। किसी पन्ने पर एक औरत की अध-नंगी तस्वीर पर उनकी आंखें देर तक टिकी रही थीं। उन्होंने सिगरेट के दो-तीन लम्बे-लम्बे कश लेने के बाद मेरी ओर देखा और मुस्कराये।

"मुझे तो उस दिन के बाद से कूपे से ही नफरत हो गयी थी। तुम्हें याद है?"

मुझे याद था। जब भी हम दोनों ट्रेन से कहीं गये हैं, राजू को वह बात जरूर याद आयी है।

"सालों ने तबाह कर दिया था। मेरे तो आज तक समझ में ही नहीं आया कि किसकी हरकत थी।"

शादी के फौरन बाद मैं और राजू पूना से आ रहे थे। शादी के हंगामों में हम लोग उस समय तक एक-दूसरे को पति-पत्नी की तरह जान भी नहीं पाये थे। हम लोगों के साथ ज्योति और पप्पू भी थे। एक कूपे में हम चारों, ज्योति और पप्पू ने लाख दर्शाने की कोशिश की थी वह लोग गहरी नींद सो रहे है, लेकिन कुछ नहीं हो पाया था। मैं रात-भर लेटी रही थी और राजू रात-भर सिगरेट पर सिगरेट पीते रहे थे, बाहर आते-जाते रहे थे। उन्होंने बहुत प्रयत्न किये थे कि कहीं दो सीटें और मिल जायें और ज्योति और पप्पू वहां चले जायें, लेकिन जगह नहीं मिल पायी थी।

"मैंने जता-जताकर कहा था कि एक कूपे और दो सीट्स !...और यह तुम्हारे भाई-बहन साले कितने उजड हैं ! यह नहीं बना कि रात किसी थर्ड-क्लास कम्पार्टमेंट में ही काट लें। सब सत्यानाश करके रख दिया..."

हर बार, फिर जब भी हमने रेल का सफर किया है राजू उस बात को सोचकर पहले गमगीन हुए हैं फिर खिसियानी हंसी हंसे हैं, और फिर...

"यार रेल भी क्या चीज़ है ! अपनी गवर्नमेंट को एक हनीमून स्पेशल चलानी चाहिए ! या होटल वालों को कमरे में चलती ट्रेन का इफैक्ट पैदा करना चाहिए। जबरन बैठे-बैठे आदमी सैक्सी हो जाता है !"

जैसे-जैसे हम लोग शहर से दूर होते गये, राजू की उम्र जैसे कम होती गयी थी। वह फिर खुद जैसे होते गये थे।

"मुझे ये केयर-टेकर साला शक्ल से ही बदनाम मालूम होता है !" टी० टी० आई० को देखकर उन्होंने कहा था, "तुम्हारी तरफ कितने गौर से देख रहा था"—उन्होंने गाली देते हुए कहा था, "बच्चे वालियों को तो छोड़ दो।"

और यह कहते हुए उनके चेहरे पर वही भाव था जो शादी की रात से पांच साल बाद तक रहा था। शायद राजू घर, मम्मी, फ्रिज, कार, नारायण, रिज़वी सबको भूल चुके थे। हां, जैसे-जैसे पूना करीब आता गया था, एक-दूसरी बेचैनी उन पर छाती गयी थी। कल्याण पर गाड़ी बदलने के बाद तो वह बिल्कुल ही बे-आराम हो गये थे। बोलना भी कम हो गया था, अंशुल के नखरे भी बरदाश्त करना बन्द हो गया था। वह थोड़ी-थोड़ी देर बाद खिड़की के शीशे उठाकर बाहर झांकते, फिर बन्द करके बैठ

जाते और बस सिगरेट पर सिगरेट। और फिर उन्होंने कहा था—"यार, घर की बातों का जिक्र वहां मत करना। अब कुछ दिनों की बात है, थोड़े दिन में सब खुद ही ठीक हो जायेगा। उन लोगों को बता कर परेशान करने से क्या फायदा ? ठीक है ना ?"

आठ

"जरा के जरा में क्या हो जाता है !" पूना पहुंच कर घरवालों से मिलने के बाद राजू ने कहा था, "अभी कल की बात है, अपनी शादी पर सब साले इतने-इतने से थे, अब जिसे देखा ! कितनी जल्दी बढ़ते हैं बच्चे भी।"

मैं खुद भी काफी देर तक घर में अजनबी महसूस करती रही थी। ठीक है, मम्मी और बाबा तो अपनी जगह थे, पप्पू और ज्योति में भी कुछ ऐसा विशेष फर्क नहीं हुआ था, सिवाय इसके कि पप्पू ने अब दाढ़ी रख ली थी। पप्पू मुझसे डेढ़ पौने-दो वर्ष छोटा था। और ज्योति—"तुम ज्योति की पीठ की हो"— मम्मी मुझे बताती थीं। लेकिन उसकी शादी नहीं हुई थी। वैसे भी मुझे जाने क्यों लगता था कि ज्योति उन लड़कियों में से नहीं जो शादी करने के बाद खुश रह सकें। उसे पढ़ने-लिखने का शुरू से ही शौक रहा है, लेकिन परीक्षा में उसके नम्बर कभी बहुत अच्छे नहीं आये। ना ही मेरे अच्छे नम्बरों से उसे कभी ईर्ष्या होती थी। अब अन्तर केवल इतना हुआ था कि ज्योति के चेहरे पर ऐनक आ गयी थी। लेकिन ज्योति को ऐनक लगाये भी हम लोग देख ही चुके थे – जब अंशुल के जन्म पर वह हम लोगों के घर आकर ठहरी थी। इसके अलावा सारा नक्शा बदल गया था।

"रीता नहीं है ?" मैंने पूछा था।

"लो, तुम्हें ये भी नहीं मालूम ! सीमा तो बाम्बे में है"—मम्मी ने बताया था—"ज्योति ने चिट्ठी में नहीं लिखा था ?"

"बाम्बे में क्या कर रही है ? अकेली ?" राजू ने पूछा था।

"नहीं, वहां मामा के साथ है। पता नहीं इंटीरियर-डेकोरेशन का कुछ ट्रेनिंग-कोर्स है। इनके बाबा की आजादी है। मैं तो जाने ही नहीं दे रही थी।"

और अलका ! इतनी-सी बच्ची देखते ही देखते निखर आयी थी। घर पर उन मामूली कपड़ों में ही देखकर, मेरी नजरें, फौरन राजू पर गयी थीं। अच्छा हुआ राजू उस समय पप्पू से बातें कर रहे थे। और मुन्नी, और दिव्या··· सब बच्चों से लड़कियों में बदल गयी थीं। जब जिनकी चोटी मैं करती थी आज उनके खुद के संवारे बाल देखकर मुझे ईर्ष्या होने लगी थी।

उस रात मैं बहुत देर तक मम्मी के पास बैठी रही थी। राजू को तो जैसे थोड़ी ही देर में मेरा ख्याल आना भी खत्म हो गया था। पहले पप्पू उसे पता नहीं, कहां-कहां लिए फिरा था, फिर दूसरी लड़कियां। अन्त में वह ज्योति के पास सो गया था।

"तुम···तुम दोनों ठीक तो रहे ?" मम्मी ने पूछा था, और मेरा दिमाग एकदम घूम गया था···

"लेकिन इसका क्या मतलब है ? ···ये तुम बेहद जाती बातें सारी दुनिया को कैसे बता देते हो ? ···तुम्हारा मुझसे झगड़ा हुआ, मेरी और मम्मी की नहीं बनती, मेरी मां यूं है, मेरा बाप यूं था···इसका मतलब क्या है ? चाहे कोई चीज किचिन में हो चाहे बेड-रूम में, कुछ ही दिनों में सारी दुनिया को उसका समाचार मिल जायेगा। अगर मैं कमीनी हूं, बुरी हूं, कुछ करती हूं, अगर हम लोग इकट्ठे नहीं रह सकते तो मुझसे कहो न, सारी दुनिया में मुझे बदनाम करने का मतलब ?" एक बार बहुत गुस्से में मैंने राजू से कहा था।

मुझे सचमुच यह देखकर जितना आश्चर्य होता उतनी ही नफ़रत कि राजू कितनी आसानी से सिर रखकर सोने के लिए कंधे तलाश ले। शादी के एक साल बाद तक जरूर यह भ्रम रहा था कि हम

बातें हम तक हैं, फिर लोग इक्का-दुक्का करके ऐसी बातें सामने आयीं कि मैं विश्वास नहीं कर पायी थी, जैसे एक पार्टी में···

"कहिए, राजू अब तो अपनी मम्मी से नहीं मिलते ?"—सिर्फ एक बार पहले की परिचित महिला ने पूछा था।

"क्या मतलब ?"

"मतलब ये कि वह कह रहे थे आपको उनका मां से मिलना पसंद नहीं।"

था···

"क्या सचमुच राजू को आपने हम लोगों से मिलने को मना कर रखा है ?"

और हजारों इसी तरह की छोटी-छोटी बातें कि मैं फिजूल-खर्च हूं, मैं उन्हें कहीं जाने नहीं देती, वह मेरे हाथ-पैर दाबते हैं हज़ारों झूठी-सच्ची बातें। जिनमें कुछ सच्ची भी, लेकिन उन्हें मेरे और राजू के अलावा कोई नहीं जान सकता था। मैंने हर बार राजू को दबी-दबी ज़बान में कहा था कि यह ग़लत है। अव्वल तो उन्होंने कभी यह माना ही नहीं था कि वह दोस्तों में घर की बातें करते हैं, लेकिन इस प्रसंग को लेकर वह कुछ खीजे हमेशा थे। और उस दिन···

"मान लिया हमारी ग़लती है ! मगर यार, कसम खाता हूं ये बिल्कुल आखिरी ग़लती है। फिर कभी ऐसा हो जाय तो गोली से उड़ा देना। यार, ग़लती इंसान से ही होती है और तुम इन सब चीजों को इतना सीरियसली क्यों लेती हो ? समझ में नहीं आता···"

फिर भी ऐसा ही होता रहा था, लेकिन मैंने कोशिश ये ही की कि फिर से इस विषय पर कोई झड़प न हो। यह राजू की एक ऐसी कमज़ोरी थी जिससे मैं अभी तक बिल्कुल भी समझौता नहीं कर पायी थी।···

"हां सब ठीक है।" मैंने मम्मी की आंखों में देखते हुए कहा था—"और आप लोग ?"

मम्मी ने गहरे इतमीनान की सांस ली थी।

"हां यहां भी सब ठीक है। बस, तुम्हारे बाबा को लड़कियों की चिन्ता खाये रहती है। अभी तो पांच हैं। ख़ैर, वह भी कोई बात नहीं, सब हो ही

जायेगा। वैसे नज़र रखना, अगर कोई अच्छा लड़का हो, तुम्हारी ससुराल या वैसे ही परिचित लोगों में।"

बावा से सुबह ही थोड़े से समय का मिलना रहा था। फिर वह अपने कमरे में चले गये थे जहां केवल मम्मी जा आ सकती थीं।

"पिछले दिनों बहुत गड़बड़ रही," मम्मी बता रही थीं "संतोष, सुरेश और वह सब लोग आ गये थे, गोपाल साब, ने कुछ जमीन बेची थी तो अपना हक मांगने के लिए काफी दिनों झगड़ा चलता रहा। अन्त में गोपाल साव ने उन्हें तो भगा दिया, मगर वह लोग सारी बस्ती में कहते फिर रहे हैं कि बुड्ढा खत्म हो जाये फिर निपटेंगे इनसे…"

संतोष, सुरेश और उनके दूसरे भाई, गोपाल साब, यानी बाबा की पहली शादी की औलादें थीं। उनको लेकर हमेशा घर में एक तनाव की-सी कैफ़ियत रहती थी। यह तमाम लोग बुरे हालों में थे, न किसी ने पढ़ा-लिखा था, ना कोई धन्धा था। सब की शादियां हो चुकी थी और बच्चे भी बड़े होने को आ रहे थे। सबसे बड़े सुरेश की उम्र लगभग मम्मी जितनी ही रही होगी।

"एक बार मेरी शादी से पहले भी सुरेश घर आया था। उसे कुछ रुपयों की जरूरत थी और उसने मम्मी को देख कर ही पहले तो सड़ा-सा मुंह बनाया, फिर कहा कि वह बाबा से मिलने आया है। मम्मी के चेहरे पर, जहां आमतौर पर बड़ी से बड़ी बात भी सकून और इतमिनान के भाव को नहीं छू पाती, उस पल मुझे थोड़ी-सी घबराहट नजर आयी थी। फिर मम्मी उसे कमरे में बैठने को कह कर बाबा के पास गयी थीं।"

"वह तो इस समय नहीं मिल पायेंगे," मम्मी ने आकर कहा था—"यह उनके आराम का समय है। तुम मुझे बताओ, क्या बात है?"

अगले दिन जब वह फिर आया था तो…

"उनके पास पैसा है कहां जो दें?"—मम्मी ने कहा था।

"जायज-नजायज सब पल रहे हैं!" सुरेश ने गुस्से में व्यंग कर…
कहा था—"सबके नखरे उठाये जा रहे हैं। अभी तो …
ब्याह भी किया जायेगा।" उसने मेरी ओर घृणा भ…
कहा था—"क्या हमें मालूम नहीं है कि सैकड़ों बीघे

कहां जाता है ? कर लो···कुछ दिन का ऐश और है, कर लो ! और बड़े साहब ! अच्छा है ! उनका पूजा-पाठ ही शायद तुम लोगों के काम आये !" और मम्मी को गुस्से में कांपता छोड़कर वह घर से निकल गया था।

उसके जाते ही धीरे-धीरे अन्दर से पहले पप्पू निकल कर आया, फिर ज्योति, फिर और दूसरे बच्चे। तब तक मुझे लग रहा था सुरेश की बात मैंने ही सुनी है, लेकिन पता चला कि हम सब कहीं न कहीं उन्हीं बातों पर कान लगाये हुए थे। मम्मी गुस्से में पहले तो सुरेश को कोसती रही थीं फिर हम लोगों पर झाड़ लगायी थी, और हम सब लोग जिस तरह कमरे में आये थे, वैसे ही वापस निकल गये थे। बाद में मम्मी ने कुछ काट-छांट करके बात बाबा को बतायी थी जिस पर बाबा बहुत नाराज़ हुए थे, और गुस्से में उन्होंने यह तक कहा था कि वह सुरेश और उसके भाइयों को कानूनन उनकी बलदियत से बेदखल कर देंगे। कुछ दिन तक गर्मा-गर्मी रही थी। फिर न सुरेश को पैसा मिला था, न बाबा ने कोई कानूनी कार्रवाई की थी। बस, हम लोगों और उन लोगों के बीच दुश्मनी बराबर पलती गयी थी।

बाबा अब उस उम्र को पहुंच गये हैं, जहां गुज़रते सालों का असर चेहरे मोहरे या शरीर पर नहीं दिखायी देता। उनके पूरे बाल सफेद हैं, यहां तक कि भवें भी। लेकिन झुर्रियां उनके शरीर पर नहीं हैं। कभी-कभी सचमुच, मम्मी और दूसरे बच्चों के आने वाले समय का सोच कर मुझे डर लगने लगता है।

"इधर पप्पू की हरकतें।" मम्मी कह रही थीं, "मैं तो समझा मरी, न जाने कैसी बुद्धि है। पैसा ! पैसा ! पढ़ाई छोड़ ही दी, खैर कुछ काम सही। मगर वहां कहां ? तुम खुद सोचो, कुछ कर्त्तव्य तुम लोगों का भी बनता है। अरे, जो कुछ है उसका फ़ायदा ही उठा लें। मगर यहां तो बस बरबादी ! और सामने वालों की लड़की ! कुछ समझती ही नहीं। तुम्हीं बताओ ?"

हम तीनों—मैं, ज्योति और पप्पू, मम्मी की पहली शादी से थे। फिर मम्मी बताती थीं, जब हमारे पिता की उम्र कोई छब्बीस साल की थी और

मम्मी की मुश्किल से इक्कीस, तो वह ऐसे बीमार पड़े कि एक महीने से ज्यादा न जी सके। तीन साल मम्मी मामा के साथ बम्बई रही थीं, फिर गोपाल साब से उन्होंने शादी की थी।

"तो उन लोगों को मेरा मतलब है सुरेश आदि, मम्मी आप उन [illegible] कुछ दिलवा क्यों नहीं देतीं? इस तरह तो···"

"दे-दिलाने के नाम पर रखा क्या है?" मम्मी की आवाज [illegible] धीमी हो आयी थी—"सब तो बिक गया। कुछ बीघे [illegible] है।"

दीदी के बच्चे, राजू की मम्मी और वह लकड़ियों और बल्लियों का ढेर जो हमारे शहर छोड़ने के दो-तीन दिन पहले से हमारे कम्पाउंड में आ-आ कर जमा हो गया था। सीमेंट के रंग में रंगी हुई अलग-अलग साइज़ की छोटी-बड़ी लकड़ियां और कंस्ट्रक्शन में काम आने वाले औज़ार। मैं कुछ देर चुपचाप अंशुल की ओर देखती रही जो इस समय पदमा की पीठ पर चढ़ा हुआ मुंह से आवाज़ें निकाल रहा था।

"हम लोग दिसम्बर में फिर आयेंगे ना---क्यों?" मेरे बोलने से पहले ही राजू ने जैसे मुझे सम्बोधित करते हुए कहा, और बात वहीं खत्म हो गयी थी।

मम्मी चाहती थीं पप्पू हम लोगों के साथ चला जाय और वहीं राजू के साथ कुछ काम में लग जाये। राजू ने बहुत उत्साह के साथ हां-हां कहा था, और फिर चलते समय उन्होंने कहा था कि वह कुछ दिनों में पत्र लिख देंगे, पप्पू को बुलाने को। इसी बीच मेरा सामने वालों की लड़की जमीला से भी मिलना हुआ था। शादी से पहले भी हम दोनों के बीच दोस्ती थी और उम्र में जमीला पप्पू से बड़ी थी। हमारे और जमीला के घरों में बहुत आना-जाना था, बावजूद इसके कि वह परिवार मुसलमानों का था। जमीला बी०ए० के अन्तिम वर्ष में थी और उसकी शादी अमरीका में डाक्टर से तै थी।

मुझसे जमीला दुनिया-जहान की बातें करती रही थी, फिर पप्पू और वह एक-दूसरे को मुहब्बत-भरी नज़रों से देखते रहे थे, फिर कहीं घूमने चले गये थे।

बचपन में भी मैंने पप्पू को कभी किसी बात पर रोते नहीं सुना था।

हम लोगों की पूना से वापसी थर्ड-क्लास में हुई थी। सिर्फ पप्पू हमें स्टेशन तक छोड़ने आया था और राजू ने बुकिंग से आकर बताया था कि फस्ट-क्लास में जगह नहीं है। इससे पहले कि पप्पू स्टेशन पर अपने किसी परिचित का जिक्र करता राजू ने कहा था—"अरे ठीक है यार, सब तरह की आदत होना चाहिये। मैंने बात कर ली है, आगे से फर्स्ट में जगह मिल जायेगी।"

"अगर कुछ दिन और ठहर जाते तो पैदल वापस चलना पड़ता।" ट्रेन रवाना होने के बाद राजू ने कहा था—"स्टेशन से घर तक टैक्सी तक के पैसे नहीं है।"

और पूना में! हम सब हर शाम राजू के साथ घूमने-फिरने जाते थे। कभी फिल्म, कभी किसी होटल या रेस्तरां। और राजू इस तरह खर्च करते थे जैसे उनकी जेब में लाखों हों। कभी एक क्षण भी ऐसा नहीं लगता था कि उनको पैसों की कमी पड़ सकती है। मुझे भी ऐसा लगने लगा था जैसे राजू नारायण से बेगिनती पैसा लेकर चले थे।

बहुत तकलीफ-देह सफर के बाद हम लोग घर पहुंचे थे, जिसके दौरान राजू बेचैनी से हर आने वाले स्टेशन के प्लेटफार्म पर उतरते रहे थे। "कुछ चाहिये तो नहीं?" वह रह-रह कर पूछते थे। चलती ट्रेन में कभी खिड़की खोलकर झांकते, कभी बन्दकर देते, "साले मैगजीन भी तो वहीं भूल आये।" स्टेशन पर किताबों के ठेलों को उन्होंने हसरत की नजरों से देखते हुए कहा था और सफर के दौरान वह रह-रह कर अंशु को डांटते रहे थे। घर पहुंच कर इससे पहले कि राजू दुविधा में पड़ें, मैंने अपने पास से टैक्सी का किराया दे दिया था।

वही घर—दोपहर की वीरानी और गर्मी में थका हुआ-सा। उस दिन बहुत तेज हवा चल रही थी और दूर-दूर तक सड़कों पर धूल दौड़ती फिर रही थी। "राजेन्द्र कुमार कान्ट्रेक्टर," पीतल की प्लेट पर धंसे हुए काले अक्षर और कम्पाउंड में फैला हुआ लकड़ियों का अंबार, सेट्रिंग का सामान। होटल वाले के छोकरे ने लपक कर हमारा सामान उतरवाया था।

थोड़ी ही देर में राजू नहा-धोकर कहीं जाने के लिये तैयार हो गये थे।

"सुनो, मैं अभी आता हूं।" उन्होंने मेरे पास आकर कहा था—"ज़रा नारायण के यहां तक जा रहा हूं। बहुत थक गयीं क्या ?" उन्होंने मुझसे नज़रें चुराते हुए कहा था—"अच्छा है, आराम कर लो। अंशुल सो गया ?" उन्होंने सोते अंशुल का गाल तोड़ा और कमरे से निकल गये।

कॉल वेल की आवाज़ से मेरी नींद खुली थी। हल्का-हल्का अंधेरा फैल चुका था। घड़ी में सात वज रहे थे। मैंने उठकर वाथरूम में हाथ-मुंह धोया और तौलिया हाथ में लिये आकर दरवाज़ा खोला—रिज़्वी।

वाहर कम्पाउंड में कार खड़ी हुई थी। एक सफेद रंग की कार।

"आदाव अर्ज।"

मैंने धीरे-से कुछ जवाव में कहा था। या पता नहीं मैंने सिर्फ होंठ ही हिलाये थे और गर्दन ऊंची-नीची की थी।

"मैं दो-तीन वार आया, मम्मी से पता चला आप लोग पूना गये हैं।" रिज़्वी कुछ क्षण रुका था, "आज सलीम, ये जो आप के आगे रहते हैं, उन्होंने वताया राजू आ गये हैं। कैसा रहा आपका ट्रिप ?"

"ठीक रहा।" अन्दर से अंशुल के रोने की आवाज आने लगी थी—"मैं अभी आती हूं।"

मैं जव अंशुल को लेकर निकली तो—ड्राइंग रूम में रिज़्वी वैठा हुआ था।

"क्यों यार ?" उसने अंशु को संवोधित करते हुए कहा था, "अरे वाह, आओ हमारे पास आओगे—चलो हम तुम्हें घुमाने ले चलेंगे, आओ।"

अंशुल धीरे-धीरे कदम उठाता, अपने अन्दाज में थोड़ा-सा शर्माता उसकी ओर वढ़ता गया। उसके उठते एक-एक कदम के साथ मेरे भीतर कुछ हो रहा था। मेरा दिल जाने क्यों हर पल नीचा होता जा रहा था।

"भाभी" रिज़्वी कह रहा था, "ये तो विल्कुल आप पर गया है—राजू ! मम्मी से पूछना, वह तो काफ़ी वड़ा होने तक भी जो कोई नई सूरत दिखी—मेरा यार, में में करके ऐसा रोता था कि आने वाला भी शर्मिन्दा हो जाये। आओ वेटा…"

"अंशुल" मैं एकदम अंशुल तक पहुंच गयी थी और रिज़्वी

पहले ही मैंने उसे पकड़ लिया था। चन्द क़दम का फ़ासला तै करने में ही जैसे मेरी सांस भर आयी थी।

"क्या हुआ ?" रिज़्वी अवाक्-सा बैठा रह गया था। उसके हाथ चुटकियां बजाने की मुद्रा में ही जैसे जमे रह गये थे।

"तुम कहो, कैसे आना हुआ ?" जैसे एकदम मेरी पूरी हिम्मत और शक्ति कई गुना बढ़कर मुझे वापस मिल गयी थी। कुछ क्षणों के लिये रिज़्वी चुपचाप रहा था, फिर एक हल्की-सी व्यंग में बुझी मुस्कान उसके मुंह पर दौड़ गयी थी।

"आपको बुरा लगा ? मैं तो पहले भी आता ही रहता था। अब कुछ ऐतराज़ है आपको ?" और उसकी आंखों का भाव बदल गया। मुझे लगा था जैसे मैं एकदम नंगी होकर भी उससे अपने शरीर को छुपाने की कोशिश कर रही हूं।

"नहीं। मुझे कोई ऐतराज नहीं"—मेरी आवाज एकदम तेज़ हो आयी थी—"पहले भी मुझे तुम्हारा कभी इन्तजार नहीं रहा। पहले भी तुम राजू से मिलने आते थे। अब राजू को इस पर ऐतराज़ है। मुझे और कुछ कहने की ज़रूरत नहीं।"

"आप"—वह उठकर खड़ा हो गया था। "तुम क्या कह रही हो ?" उसकी आवाज़ डूबने लगी थी, "मैं तो तुमसे ये कहने के लिये आया था कि राजू कोई दूसरा काम शुरू कर दें। फायदा, नुकसान तो धंधे में लगा ही हुआ है। बड़ा काम ले लिया, पिताजी की डेथ के बाद, फिर शादी हो गयी, गलत तरह के नौकरों का साथ हो गया, उन्होंने डुबा दिया। अब कहने को तो लोग ये भी कहते हैं कि उन्होंने सट्टे-जुए में उड़ा दिया। लेकिन हम लोग जानते हैं, ऐसा नहीं है। अब यही एक तरीका है कि वह फिर से कोई काम ले लें—छोटा-मोटा ही सही। जिन लोगों को अपना पैसा डूबता लग रहा है, वह भी जब देखेंगे कि आदमी कुछ कर रहा है, कहीं से पैसा मिलने की उम्मीद बनती है तो वह भी कुछ और मदद करने से नहीं हिचकिचायेंगे। रही शुरू में पैसा लगाने की बात, तो—राजू और तुम लोग कोई गैर तो हो नहीं। राजू तो मेरा बचपन का दोस्त है, हम लोगों ने इकट्ठे क्या नहीं किया ! और अगर राजू को इस तरह पैसा लेने

में इंकार है तो ठीक है, पहला काम वह मेरे छोटे भाई को हिस्सेदारी में लेकर कर सकते हैं।"

"यह सब-कुछ तुम मुझसे क्यों कह रहे हो ?" पूना से वापसी के सफर की थकान धीरे-धीरे फिर से उबरने लगी थी। "मुझे इन बातों से क्या लेना है ? जो राजू ठीक समझेंगे, वहीं करेंगे।"

"तुम समझा तो सकती हो।" रिज़वी की आवाज़ में भावुकता का अंश बढ़ता जा रहा था। उसकी आवाज़ धीमी हो गयी थी। इससे पहले कि वह अंशुल को छुये।

"ठहरो।" मैंने थके से स्वर में कहा था—"मुझे समझाने की क्या पड़ी है ? राजू खुद समझदार हैं। और तुम्हें राजू की इतनी फ़िक्र कैसे हो गयी ?"

वह एकदम चुप रह गया था। मैं भी खामोश टिकटिकी लगाये उसकी ओर देखती रही थी। "तुम जानती हो"—उसने कहा था—"मुझे मालूम है, तुम जानती हो, मैं औरतों को लेकर कभी जज़बाती नहीं होता। तकरीबन सब एक जैसी होती हैं। बस, ऐड़ी से चोटी के बीच चीज़ों का, जिस्म के हिस्सों का आपस में एक-दूसरे से फ़ासला बदलता रहता है। और सब-कुछ एक-सा रहता है। मैं शायद बकवास कर रहा हूं, लेकिन मेरा मतलब इतना है कि यह सब तुम्हारे लिये है, तुम्हारी वजह से।"

मेरी कुछ कहने की सामर्थ्य खत्म हो गयी थी। पता नहीं कब रिज़वी ने अंशुल को फिर अपनी ओर बुलाया था, कब अंशुल उसके पास जाकर बैठ गया था। पता नहीं, कैसे पास की आवाज़ें सुनने की मेरी शक्ति एकदम खत्म हो गयी थी और दूर सड़कों पर से गुजरती मोटरों की आवाज़ों पर जाकर केन्द्रित हो गयी थी।

जब मेरी आंखें पास का कुछ देखने योग्य हुई थीं तो अंशुल रिज़वी के पास बैठा था और रिज़वी खिड़की के बाहर देखते हुए धीरे-धीरे उसके सिर पर हाथ फेर रहा था। समय की हर धड़कन मेरे कानों को [illegible] लगी थी।

"वैसे यह सिर्फ़ एक सुझाव था। अगर तुम—अगर [illegible] ठीक है, नहीं तो…" उसने कुछ [illegible] [illegible] [illegible] [illegible]

"आफ्टर ऑल'''आई एम ए बिजिनेस-मैन। दोस्ती, जज़बात अपनी जगह।" उसने केवल एक क्षण को मेरी ओर देखा था। "कल तक उसी रिज़्वी का बाप—मेरा बाप, लोगों ने आंखों से देखा है—इस काबिल नहीं समझा जाता था कि लोग अपने कमरे में बिठायें। मैं भी उन दिनों को भूला नहीं हूं।" एक पल को उसने अपने चारों ओर नज़र डाली थी'''"तब यह मकान पक्का नहीं था'''उस तरफ जहां मम्मी रहती हैं, अन्दर, देवढ़ी थी'''उससे मिला हुआ कमरा'''बैठक। वहां मास साब राजू को पढ़ाया करते थे एक कुर्सी पर वह'''लम्बी आराम कुर्सी'''एक पर राजू'' एक और आराम कुर्सी। मैं कभी स्टूल पर बैठता था'''कभी एक टिन की कुर्सी पर'''। और वह बूढ़ा मास्टर, अब तो उसे मरे हुए भी सालों गुजर गये, एक तो बात-बात पर मुझे मारता था, फिर''' "जा बे, तू क्या पढ़ेगा, लपक कर सिगरेट ले आ, माचिस ले आ, पान ले आ।" राजू के पिताजी की मेहरबानी थी कि हम इस घर में दाखिल हो लेते थे। तब बचपन में ऐसा लगता था, लेकिन भला एक पटवारी और फारेस्ट-कंट्रेक्टर के बीच मेहरबानी का क्या रिश्ता ? वह भी बिजिनेस का ही पार्ट था।"

थोड़ी देर के लिए वह चुप हुआ था।

"अच्छा। मैं चलता हूं।" उसने अंशुल को प्यार किया था। "नहीं, मज़ाक नहीं यह बच्चा बिल्कुल तुम्हारे ऊपर गया है।" खामोश होकर उसने कुछ सोचा था, फिर कमरे के बाहर निकल गया था।

"माफ़ करना'''" उसकी आवाज़ सुनकर मैं बुरी तरह चौंकी थी—"मैं भूला जा रहा था। आज आपकी बर्थ डे है।" उसने आंखों में देखते हुए कहा था—"पिछले साल और उससे पहले, हमेशा राजू ने मुझे इन्वाइट किया है, इसी से मुझे याद रह गया होगा'''" कहते हुए वह कहीं और देखने लगा था''' "ऐनी वे'' मेनी रिटर्स आफ द डे'''!" और उससे पहले कि मैं कुछ कह पाती, समझ पाती मैंने कार के स्टार्ट होने की आवाज़ सुनी थी और मैं अपने हाथ में थमे उस पैकिट को घूरती रह गयी, जो कुछ देर पहले रिज़्वी के पास से मुझ तक पहुंचा था। और जिस पर किसी अनजानी लिखावट में लिखा था—मिसेज राजेन्द्रकुमार। मैनी-मैनी रिटर्न्स आफ द डे। एस० रिज़्वी।

दस

राजू उस रात साढ़े ग्यारह बजे लौटे थे। और उनका मूड कुछ बहुत अच्छा नहीं था।

"ये ब्रेड है।" उन्होंने मुझे देखकर कहा था—"और ये···ऐसा करो, घर में तो कुछ पकाने का होगा नहीं बस···अरे यार आज ही की तो बात है कल तो फिर···वह तो कंबख्त मिला नहीं—नारायण जब जिसकी ज़रूरत हो तब वही कला—बत्तू···साला भाड़ में जाय!" और वह एकदम थके से बिस्तर पर गिर गये थे।

"सब साले कहने ही कहने के हैं।" उन्होंने बिस्तर पर पड़े-पड़े कोसते से स्वर में कहा था—"जबरन मुंह खुलवाना चाहते हैं। हमने अपने वक्त में इनके लिए क्या नहीं किया? कहने का कभी मौका नहीं दिया, आंखों में देखकर कर देते थे। नारायण और रिज़वी शिकरा···" वह एक पल को रुके थे, फिर आगे बोलते गये थे—"अब साले खाने-कमाने लगे हैं तो क्या, गर्मियों में कितने बार मैं अपने खर्चे पर इनको कहां-कहां लेकर गया हूं··· कश्मीर···नैनीताल···दुनिया जहान में सालों को घुमाया है, और इस शान से कि चाहे तो भी मरते दम तक नहीं भूल सकते···अपना-अपना वक्त है।"

न मम्मी की तरफ से कोई आया था न राजू उधर गये। हां, एक और तबदीली थी। इन कुछ दिनों के बीच ही उषा दीदी के पति, सुनील जीजाजी ने एक मोटर साईकिल खरीद ली थी, जो घर के बाहर कम्पाउंड में खड़ी हुई थी।

"ठीक है।" राजू ने सुनकर कहा था—"दोनों कमाते हैं। दं[illegible] पढ़ाती है, जीजाजी की भी नौकरी के अलावा ऊपरी आमदनी [illegible] नहीं। और फिर।" वह एकदम उठकर बैठ गये थे। "[illegible] मेहरबानी है। तुम खुद ही देख लो, हम नहीं तो वह। मु

मालूम था। आज मोटरसाइकिल दिलायी है, कल अपना सोना-चांदी दीदी को भेंट कर देंगी, परसों यह मकान भी। और फिर हम कर भी क्या सकते हैं ? नौकरी ? चलो, तुमने इतना पढ़ लिया होता। हम तो सर्टिफाइड जाहिल हैं ही।"

"पढ़ाई छुड़वाई किसने थी ?"

"अब वह सब छोड़ो। जो हुआ सो हुआ। किस्मत में लिखे को कोई कैसे टाल सकता है।"

शादी के समय मैंने इंटर की परीक्षा पास की थी और मैरिट में मेरा दूसरा नाम था। शादी के बाद राजू ने ज़ोर देकर मेरी पढ़ाई खत्म करायी थी और इसका मुझे हमेशा से दुःख था।

"तोते पढ़ते हैं"—राजू कहते—"और किसलिए पढ़ना ? मेरे ख्याल में तो तुम लाखों पढ़े-लिखों से कहीं समझदार हो। क्या ड्राइंग रूम में डिग्री टांगने का शौक़ है ? और तुम्हें पढ़ने-लिखने की फ़ुर्सत कहां ?" राजू ने हर बार इस संदर्भ में यही किया था।

"बेहद थकान हो गयी"—राजू ने लेटे-लेटे अंगड़ाई लेकर कहा—"जुलाई ही आ गया, पता नहीं बादलों के नसीब भी हम जैसे कब से हो गए, बरसते ही नहीं। और गर्मी—लगता है खून-पसीना एक करके जायेगी।" फिर उन्होंने मेरी ओर प्यार-भरी नज़रों से देखते हुए पूछा था—"क्या ख्याल है ?" और मेरे जवाब देने से पहले ही वह उठकर बैठ गये थे।

"अभी तो तुम कह रहे थे थक गये। और थक जाओगे।"

उन्होंने एकदम मुझे अपनी बाहों में कस लिया था और उनके होंठ और उंगलियां चलने लगी थीं।

"यार, पता नहीं तुम्हारे कब समझ में आयेगा ? अरे यार, सोते समय पहनने के लिए गाउन ही क्या कम होता है, तुम तो कभी-कभी इस तरह बंध-कस कर लेटती हो जैसे बार्डर पर जा रही हो। पता चला, जब तक देवीजी तैयार हों, पति का मूड ही खत्म हो गया।"

सब-कुछ उसी जाने-माने अन्दाज में शुरू हो गया था। होंठ उंगलियां, हाथ, पैर। एक मर्द, एक औरत। वस्त्रहीन पति-पत्नी। राजू, उनका खास

अंदाज, उनके माथे, पीठ के झोल और जंघों के बीच पसीना फूटने लगा था। और वह हल्की-हल्की-सी आवाजें जिनका मतलब सिर्फ और सिर्फ थकान होता है। और मुझे लग रहा था इस सब में मेरी कोई जगह नहीं थी, कोई हिस्सा नहीं। राजू थे। उनकी पत्नी थी। मैं दूर से उन दोनों को कहीं पहुंचने की कोशिश करते, कहीं एक-दूसरे को खोज लेने का प्रयास करते देख रही थी और मेरा दिमाग मुझे फिर पीछे की तरफ दौड़ाये लिए जा रहा था। कुछ वर्ष पहले—हमारी शादी के बाद मेरी पहली वर्ष गांठ···

"हर साल तुम्हें लगेगा—एक वृक्ष की तरह तुम अपनी जगह अटल होती जा रही हो···वृक्ष की जड़ें दिन-ब-दिन गहरे और गहरे बढ़ती जायेंगी, और शक्तिशाली हो जायेंगी। इतनी कि बड़ी से बड़ी आंधी में वह सिर्फ झूमेगा, डोलेगा···और उसका कुछ भी नहीं बिगड़ पायेगा। तुम्हें मालूम है, मैं वह मिट्टी हूं जिसमें तुम्हारी जड़ें हैं। देखना जवानी का सुरमई रंग बुढ़ापे में बदलते तुम्हें जरा भी पछतावा नहीं होगा···" तब शिमले में···हम दोनों थे। सुबह-सवेरे राजू ने मुझे झंझोड़ दिया था—कमरे में फूल ही फूल थे—पता नहीं कौन—कब—उन्हें वहां सजा गया था मेरे कंबल से लेकर फर्श तक फूल ही फूल बिखरे पड़े थे। कदम रखने को जगह नहीं थी—बस, तुम अगर मेरे साथ हो तो मैं तुम्हें कुछ नहीं होने दूंगा—जो तुम्हें चाहिए, जिस चीज की तमन्ना करो, गुलाम तुम्हारे कदमों में ला डालेगा। क्या हुक्म है मेरे आका?" स्केटिंग करते लोग ···रिपटते से—पगडंडियां तै करते बच्चे—बीच आकाश से एकदम ओझल होता सूरज—माचिस के डब्बे जैसे फैले हुए मकानों के सिलसिले—ऊंची पहाड़ी पर उस स्कूल का लम्बा-चौड़ा मैदान—वीरान कॉरीडोर्स—सेंट जार्जेज—कभी वहां बचपन में राजू ने पढ़ा था—"तुम्हें मालूम है, मैं वह मिट्टी हूं जिसमें तुम्हारी जड़ें है···।"

"हटो यार—ऐसी क्या परेशानी है?" राजू खीजी-सी हंसी के साथ झल्लाये स्वर में कह रहे थे—"तुम तो बिल्कुल रुई भरे तकिये जैसी हो रही हो। क्या बात है?—वाट् द हेल इज रांग?"

राजू जाने क्यों असमंजस के क्षणों में अंग्रेज़ी बोलते हैं। वैसे भी

उनकी भाषा में अंग्रेजी शब्द होते हैं, लेकिन जब कभी वह किसी ऐसे क्षण में शब्दों का सहारा लेते हैं जहां स्थिति उनकी समझ से बाहर हो, वहां उनसे पूरे-पूरे वाक्य अंग्रेजी में ही निकलते हैं। सिवाय तब जब वह गुस्से में अपना आपा ही खो दें। उस समय राजू कुछ भी नहीं बोल सकते।

"अरे, फॉर गाड्स सेक···कुछ बोलो ना···?" उन्होंने मेरे तकरीबन निश्चेष्ट शरीर को हिलाते-डुलाते कहा। मेरा पूरा शरीर भी पसीने में डूब चुका था और मेरी गर्दन के नीचे पसीने की नन्हीं-नन्हीं बूंदें ढुलक रही थीं। राजू की इतनी देर की बेरहमी के बाद भी शारीरिक स्तर पर मुझे कुछ भी महसूस नहीं हो रहा था—न दर्द, न तकलीफ, न कोई चाह। और फिर वही हुआ। राजू एक झटके के साथ मुझसे अलग हो गये। सिगरेट सुलगायी थी और शून्य में घूरने लगे थे। मसहरी धीरे-धीरे हिल रही थी क्योंकि राजू लेटे-लेटे ही पैर हिला रहे थे।

"यह यहां गन्दे कपड़ों को किस लिए रखा है?" एकदम उनका स्वर बदल गया था—"अगर नौकर न होंगे तो घर को इस तरह कूड़ाखाना बनाकर रखा जायेगा? न धूल साफ की गयी है, न झाड़ू लगायी गयी है। मैं पूछता हूं आखिर यह है क्या? मान लिया थकन हो गयी, तो क्या हम इंसान नहीं हैं? आधा दिन धूप और गर्मी में मारे-मारे फिरते रहे। क्यों? किस लिए? मुझे क्या पड़ी है जो इस तरह परेशान होता फिरूं? कल ही मम्मी के पास चला जाता हूं, सब ठीक हो जायेगा। और अब शायद यही करना पड़ेगा।" और राजू ने तेजी से पतलून के पाइंचे ऊपर खींचे थे, चप्पलों को घसीटा था और कमरे के बाहर निकल गये थे।

"अरे यार, उठ भी जाओ"—रात को किसी समय राजू ने कहा था। जाने किस समय वह वापस कमरे में आकर लेटे थे और अब मुझे जगा रहे थे। फिर उन्होंने किसी बात का इन्तजार नहीं किया था। मैं उसी तरह लेटी रही थी और उन्होंने मुझे बाहों में कस लिया था। उनके शरीर में तनाव था, न उनके होंठ मेरे होंठों से मिले थे। उनका सिर मेरे वक्ष में धंसा हुआ था और शरीर! राजू बिना मेरी प्रतीक्षा किये अपनी दशा में निकल गये थे। कुछ ही क्षणों में उनका शरीर बेजान-सा हो गया था और वह मुझे छोड़ कर अलग हट गये थे। फिर कुछ क्षणों बाद खर्राटों की आवाज़···।

उस समय अंधेरा ही था। लेकिन अंधेरे को देखकर भी तो रात के पहरों का अंदाजा लगाया जा सकता है। शाम का अंधेरा कुछ और होता है, गहरी होती रात का कुछ और। और रोशनी होने से काफ़ी पहले मगर सुबह के पास का अंधेरा—वह अलग होता है। इस अंधेरे में एक अजीब-सी बेचैनी की कैफ़ियत होती है। जैसे कभी-कभी बिजली के तारों को साधे खड़े खम्बों में से अजीब तरह की आवाज़ें आती हैं—अजीब तरह की बेचैनी में डूबी गुनगुनाती-सी आवाज। सुबह के अंधेरे में भी शायद कुछ ऐसा ही होता है। मैं चुपचाप उस अंधेरे में, जो रोशनी होने के एक क्षण पहले तक गहरे से और ज़्यादा गहरा होता जाता है, यहां तक कि एकदम रोशनी फैलने लगे, राजू के बाजू में लेटी रही थी। जाने क्यों, इस समय उनके खर्राटे मेरे कानों तक पहुंचकर भी नहीं पहुंच रहे थे।

मैं उठी और अपनी वार्ड रोब तक गयी। साड़ियों को इधर-उधर किया। लाल पेपर में फीते से लिपटा वह डिब्बा। 'मैनी रिटर्न्स ऑफ द डे। एस० रिज़वी।' सोने की जंजीर और उसमें टका हुआ एक बड़ा-सा लाल पत्थर। मैं देखती रही थी। उस पत्थर को मुट्ठी में भींचकर महसूस किया। एक सर्द-सा टुकड़ा मेरी हथेली में चिपक-सा गया। फिर मैंने उस फीते को, उस लिपटे हुए कागज को और उस चिट —'मैनी रिटर्न्स…' को अलग किया, किचिन में गयी, और अंगीठी में उन्हें डाल कर आग लगायी। धीरे-धीरे, पहले कागज़ जला था, फिर फीता, चिट और डब्बा —डब्बा केवल काला हो गया, जला नहीं।

जब मैं किचिन के बाहर निकली तो आकाश मटमैला होने लगा था। उधर मम्मी की तरफ से जागे हुए लोगों की आवाजें सुनायी दे रही थीं। सुनील जीजा जी घर में सबसे पहले जागते थे। सुबह की चाय वही बनाते हैं; उषा दीदी को पिलाते हैं और फिर अपने कामों में व्यस्त हो जाते हैं। मैंने सोचा, जाने इस समय वह क्या कर रहे होंगे? और अन्दर आकर पलंग पर गिर गयी। कुछ ही पल में मेरी आंख लग गयी थी।

ग्यारह

समय बीतता गया था।

राजू की हर शाम इस उम्मीद पर शुरू होती कि कल जरूर कुछ हो जायेगा, और सुवह होने से पहले ही वह हताश हो जाते।

"असल में यह सब कभी किया हो तो जानें!" वह बहुत उदास भाव से कहते—"और चलो, अगर कोई रास्ता नज़र आ रहा हो तो कोई बात है। इस वक्त तो जिधर देखो जंगल-ही-जंगल नज़र आता है। तुम बताओ —नहीं, एक बात है, तुम्हीं बताओ मैं क्या कर सकता हूं?"

कुछ दिनों बाद रेफ्रिजरेटर नारायण के यहां चला गया था। फिर एक दिन राजू ने रिकॉर्ड और रिकॉर्ड-प्लेयर समेटा था। उस वक्त वह कुछ ज़्यादा ही सीरियस हो गये थे। गानों से राजू को बहुत लगाव था।—"हल्की हल्की रोशनी—मद्धम स्वरों में बहता संगीत—मोटे कालीन—हवा में हिलते पर्दे—मैं और तुम"—यह राजू का आइडिया था—एक खुशगवार ज़िन्दगी का। और संगीत में जैसे राजू बंध-से जाते थे। बिल्कुल चुपचाप उंगलियों में दबा हुआ सिगरेट और अन्दर की तरफ गहरी होती जाती उनकी आंखें। ऐसा नहीं कि राजू संगीत के बारे में जानकारी रखते हों, बस, अच्छा संगीत उन्हें बहुत अच्छा लगता था और कुछ क्षणों के लिए वह उसमें खो जाते थे।

"मुझे किसी से ऐसे ही पैसे लेना अच्छा नहीं लगता"—राजू घर से निकलने से पहले एक पल को रुके थे और उन्होंने केवल इतना कहा था। फिर टेप-रिकॉर्डर, कैमरा, उनका कीमती दूरबीन—सब धीरे-धीरे घर से जाते रहे। और घर में ज़रूरत की चीज़ें आती रहीं।

"नारायण कुछ काम करने के मूड में है"—एक शाम राजू ने कहा था।—"मुझ से कह रहा था तुम मेरे पार्टनर हो जाओ। तुम्हें कुछ लगाने

की जरूरत नहीं। मेरे सिर तो वैसे भी बहुत सी जिम्मेदारियां हैं। यह काम तुम देखना और प्रॉफ़िट आधा-आधा।"

"नारायण को आपसे इतनी हमदर्दी कैसे हो गयी है ?"

कुछ क्षण को राजू ने मेरी ओर घूर कर देखा था फिर टेबिल पर रखी कांच की ऐश ट्रे उन्होंने उठा कर फेंक दी थी। राजू अपना सिर दोनों हाथों में डाल कर टेबिल पर ही औंधे हो गये थे।

"तुम यही चाहती हो ना, कि मैं पागल हो जाऊं ? अपने कपड़े फाड़ लूं और सड़कों पर दर-ब-दर भीख मांगता फिरूं ? जो कोई मेरा अच्छा चाहेगा, वही तुम्हें काटने दौड़ेगा ? तुम क्या समझती हो मैं उसके साथ कोठों पर जाता हूं ? औरतों के पीछे मारा-मारा फिरता हूं ? वह अगर मेरा कुछ भला करना चाह रहा है तो इसमें तुम्हारा क्या बुरा है ? हज़ार बार समझाया कि हमारी दोस्ती को तुम नहीं समझोगी। और फिर दोस्ती-वोस्ती गयी भाड़ में, तुम्हीं कोई रास्ता बताओ--मैं तैयार हूं करने को।"

मैंने राजू से ये ही कहा था कि वह कोई ऐसा काम करे जिसमें कमाई बेशक बहुत ज़्यादा न हो, लेकिन हम लोग इज्जत से रह सकें। यूं इस तरह नारायण या उनके घरवालों से मिलते मुझे छोटेपन का एहसास होता है। कल जो हम बराबरी के थे, उनको एकदम दाता मान लेना कम से कम मेरे बूते में नहीं था।

"ऐसा कोई काम तुम्हीं सुझाओ ?" बाद में राजू ने समझाने के अंदाज़ में कहा था—"देखो तुम तो कुछ समझती नहीं हो—मैं अपने नाम से तो कुछ करने से रहा। पैसा ! और पैसा अगर हो भी तो मार्केट वाले ? अभी कुछ दिनों तो इसी तरह गाड़ी चलानी पड़ेगी। यार, कम से कम रोज का ख़र्चा तो चलाना है, आराम-वाराम की बाद को सोची जायेगी। और वह तो सिर्फ नारायण की वजह है, जो यह सब उधार वाले चुप बैठे हैं, वरना सालों ने जेल भिजवा दिया होता। आखिर तुम्हें उसमें ऐसी क्या बुराई नजर आती है ? वह तो शरीफ आदमी है। समझ में नहीं आता !"

घर में खाने-पकाने के नाम पर अब एक बार चूल्हा जलने ल[illegible]।
राजू बराबर नारायण के यहां जाने लगे थे। फिलहाल वह [illegible]

पर ही बैठ रहे थे और हम लोगों के छोटे-छोटे खर्चे भी किसी तरह चलने लगे थे। नारायण अब हमारे घर बहुत कम आने लगा था। पहले जो राजू और नारायण के पीने-पिलाने के प्रोग्राम होने लगे थे अब उनमें एकदम कमी आ गयी थी। नारायण आता भी तो राजू को लेने या वापस छोड़ने। घर के अन्दर आना उसने खुद ही कम कर दिया था।

"यार, तुम जानते तो हो!" मैं राजू को कहता हुआ सुन सकती थी—"कितनी बद-दिमाग़ औरत है। अरे, अब तुम तो जानते हो हमारी मम्मी और दीदी! बेचारी न किसी के लेने में, न देने में, अपने काम से काम। अरे, जिसकी ऐसे लोगों से नहीं बनी···। अब छोड़ो। बताओ, उसे तुम से क्या मतलब है? तुम मेरे दोस्त हो, हमारे आपसी ताल्लुक को हम ही समझ सकते हैं, वह क्या जाने? यह मैं हज़ारों बार समझा भी चुका हूं, लेकिन···" और राजू नारायण की ओर झुके होंगे—"लेकिन पता नहीं वह चाहती क्या है? ये तक उसे अच्छा नहीं लगता कि मैं किसी से हंसकर बोलूं। नहीं, प्यार तो खैर करती है। यार, वह बहुत पजेसिव है। अब आजकल देख लो—मेरा ज़्यादा समय तुम्हारे साथ बीतता है इसलिए तुम्हारी बात भी करो तो खाने को दौड़ती है। या पहले, यही तुम थे और बात-बात की तारीफ़।"

बहरहाल, राजू, नारायण का इन्तज़ार करते और वह राजू को घर से लेता हुआ दूकान जाता—कभी स्कूटर पर, कभी कार से। वह बाहर से ही हॉर्न बजाता और राजू को लेकर चला जाता। उसका स्कूटर भी बराबर राजू की सर्विस में रहता और दोपहर का खाना खाने राजू ज़्यादातर स्कूटर पर ही घर आते। घर आते हुए, कभी-कभी राजू को देर भी हो जाती, लेकिन वह पूरी कोशिश यही करते के खाने के समय घर पहुंच जाये! "तुम तो जानती हो"—वह जिस दिन ज़्यादा लेट हो जाते या कभी-कभार अगर दोपहर को नहीं पहुंच पाते तो कहते—"अरे यार, वही नारायण का चक्कर। पकड़ कर साथ ले गये, आफिसों के काम थे। साले ने न खुद खाया, न मुझे खाने दिया। तुमने तो खा लिया था ना?" राजू पूछते, यह अच्छी तरह से जानते हुए कि मैं उनका इन्तज़ार करती रहती थी, और उनके न आने का मतलब मेरा भूखा रहना होता था।

खाना घर में केवल दोपहर को पकता था। दोनों वक्त की रोटियां मैं इकट्ठे डाल लेती और शाम के खाने की छुटपुट चीजें राजू अक्सर होटल से लेते हुए आते। कभी सीख के कबाब, कभी पसन्दे, कभी-कभी तन्दूरी मुर्गा भी।—"अगर पका नहीं सकते, तो क्या खा भी नहीं सकते ?" वह बड़ी शान से कहते। दिन-भर के थके होने के बावजूद वह टेबिल अपने हाथों से लगाते और मुझे और अंशुल को मजबूर कर-करके खिलाते।

उस दिन राजू दोपहर को घर नहीं आये थे। अंशु सो गया था और मैं कोई किताब लिए घण्टे गुज़ारती रही थी। बहुत दिन बाद आसमान एकदम खुल गया था और चिनचिना कर धूप निकल आयी थी। दोपहर गुज़री थी। कोई तीन बजे मैंने दूकान पर फोन किया था। राजू नारायण के साथ कहीं गए थे। फिर मैंने अपने लिए चाय बनायी और सुमन को आवाज़ देकर होटल पर से कुछ समोसे मंगाये। तभी राजू का फोन आया था।

"सुनो, मुझे देर हो गयी। कुछ लोग आ गये हैं बाहर से। तुम ऐसा करो—क्या खाना खा लिया तुमने ? यार, कितनी बार तुम्हें समझाया है। अच्छा आप फौरन खाना खाइये, मैं शाम को जल्दी आ जाऊंगा।"

टेलीफोन रखने के बाद मैंने चाय पी, और जब अंशुल जागा तो उसे लेकर यूं ही घर के बाहर निकल गयी। टहलते हुए मैं दूर तक निकल गयी। दूर पहाड़ पर से बहता पानी तेज धूप में चमक रहा था और इतने दिनों के पानी से ही ज़मीन दूर-दूर तक हरी हो गयी थी। अंशु मेरे आगे-आगे चल रहा था और मैं रह-रह कर उसे थाम लेती थी। चंद दिनों में हमारे घर का फोन कट जायेगा, मैंने सड़क के किनारे लगे खम्बों को देखकर सोचा था—पिछला बकाया।— "नारायण के एक जाननेवाले को लाइन की जरूरत है" राजू ने मुझे बताया था—"और अपने लिए तो वैसे भी यह सब बेकार है। जब जरूरत होगी तो लगवा लेंगे। डायरेक्ट्री में नाम तो अपना ही रहेगा, बस लाइन उसके यहां चली जायेगी। वह बकाया भी पे करेगा और···" राजू एक पल को रुके थे—"नारायण कह रहा था कि ही विल पे समथिंग टू अस आलसो।"

वैसे भी टेलीफोन ही अब शायद अकेली ऐसी चीज़ रह गयी थी जो

हमें अभी तक अपने अतीत से जोड़ती थी। यूं ही हो जाये! सारे संबंध एक बार बिलकुल ही खत्म हो जायें। उसके बाद? हां, उसके बाद कुछ नहीं तो हमारे आगे एक रास्ता तो होगा। यों जिधर हम बढ़े जा रहे हैं, वह राह का एक ऐसा हिस्सा था, जिसे ज़्यादातर लोग किसी-न-किसी मोड़ का सहारा लेकर बचा जाते हैं। अगर हम मुड़ नहीं सकते तो···मैंने बिलकुल प्रार्थना के भाव से सोचा था, तो हम इस रास्ते को छोड़ दें। हम क्यों इसे नहीं छोड़ सकते।

सामने से एक आदमी बहुत सारे खिलौने एक बांस के सहारे टांगे आता दिखायी दिया। लकड़ी का बुरादा भरे तोते, चक्रियां, फिर्कियां, रबर के धागों के सहारे झूलती गेंदें। और अंशु! अंशु सड़क पर रुककर उसकी ओर देखने लगा, यहां तक कि वह आदमी आवाजें लगाता हमारे पास से गुज़र गया।

छः बजा था। सात। आठ। बारह।

मैं भूख से बिलकुल बेदम हो गयी। किचिन तक जाकर वापस आती, हर नज़र के साथ मैं और ज़्यादा थकती गयी थी। दोपहर की बनी चपातियां और तूअर की दाल। शाम को किसी समय हमारी पुरानी नौकरानी सबको घर आयी थी, शायद अपने कुछ बकाया पैसे लेने, पैसे तो मैं उसे नहीं दे पायी थी, हां, सारा साग उसके हवाले कर दिया था। इस मौसम में बासी साग खाना वैसे भी ठीक नहीं। शायद राजू बाज़ार से कुछ लेते हुए आयें। और नहीं तो भी हम लोग ऑमलेट बनाकर खा सकते थे। अगर राजू जल्दी आ गये तो पास ही से सब्ज़ी खरीदकर लायी जा सकती है। तब भी जब कि घर में गैस नहीं है और जो कुछ भी पकाना होता है वह केरोसीन के चूल्हे पर पकता है। फिर भी···।

कभी, बहुत पहले भी मेरे साथ ऐसा हुआ था। भूख से लड़ते-लड़ते मैं जाने कैसे सो गयी थी और फिर जब बहुत रात गुज़रे मेरी नींद टूटी थी तो पहले तो मैं समझ ही नहीं पायी थी कि कहां हूं; क्या हो रहा है। फिर थोड़ी देर बाद जैसे सारी बेचैनी मेरे पेट के बीच धीरे-धीरे सुलगते एक अंगारे में केन्द्रित हो गयी। अंगारा जो लगता था, रह-रह कर दहक रहा हो। सारा शरीर सुन्न पड़ गया था और कनपटियों में दिल की धड़कन न

केवल सुनायी दे रही थी, महसूस भी की जा सकती थी। इस बार आंख खुलने पर सबसे पहले मेरी नज़र घड़ी पर गयी थी। सवा दो। और जाने क्यों ऐसा लगा कि मेरे सोने के बीच ही राजू आ गये होंगे और आकर सो गये होंगे। नज़र के खाली विस्तर से लौटने के पहले ही मुझे याद आया कि दरवाज़ा अन्दर से-बोल्ट है और हो सकता है राजू घण्टी वजा-वजाकर थकने के वाद···। हो सकता है वह मम्मी के इधर···। मैं वहुत तेज़ी से विस्तर छोड़कर दरवाज़े तक आयी थी—वाहर सन्नाटा था—सन्नाटा और चांदनी। मैं कुछ देर अपने दरवाज़े को पकड़े ठिठकी-सी खड़ी रही थी। मम्मी की तरफ अंधेरा था, जैसे सब घण्टों से वेखवर सो रहे हों। फिर उसी तरह, नंगे पैर, पंजों के वल चलती मैं मम्मी के दरवाज़े तक पहुंची थी और उसे हिलाकर देखा था— अन्दर से वन्द था। फिर मैंने दर-वाज़े पर कान लगाकर सुना था, अन्दर किसी भी तरह की आवाज़ सुनायी नहीं दी थी। दरवाज़े को मैंने हौले-हौले खटखटाया था। इतना कि कोई जाग रहा हो तो सुन ले। मुझे यकीन था, अगर राजू मम्मी से यहां ही थे तो इस तरह सो नहीं सकते थे। सब वैसा ही रहा था। न कोई दरवाज़े तक आया, न दरवाज़ा खुला। राजू अभी नहीं आये। मुझे जाने क्यों यह विश्वास हो गया।

वापस आते-आते मुझे भूख की कमज़ोरी मालूम होने लगी थी। मगर इतनी रात तक ? मेरी कुछ समझ में नहीं आया कि मैं क्यों इस तरह भूखी रहूं ? जाने कहां से यह सवाल आकर मेरे भीतर अंकित हो गया। फिर एकाएक ही लगा, खाना खाने के समय को वहुत देर हो चुकी है। मैं और कुछ नहीं, केवल उस क्षण का इन्तज़ार कर रही हूं जब राजू आयें और मुझसे पूछें—"तुमने खाना खा लिया ?" और मैं चुपचाप किसी ओर खोयी नज़रों से देखती रहूं, कुछ जवाब न दूं। और राजू शर्मिन्दा हो जायें। माफी मांगें, अपने हाथ से खाना लगाकर मुझे खिलायें और मुझे यह यकीन दिलाते जायें कि अब ऐसा नहीं होगा, कभी नहीं।

सन्नाटे में कोई कार आकर रुकी। एक पल की खामोशी के वाद किसी ने हॉर्न वजाया था, फिर दूसरी वार।

"राजू···ऐ राजू···" नारायण की आवाज़। कम्पाउंड

चांदनी में नारायण की लम्बी काली कार की आकृति साफ दिखायी दे रही थी और कार के अन्दर की लाइट्स जल रही थीं।

"उठो यार, राजू···" नारायण राजू को, जो कार की पिछली सीट पर फैले पड़े थे, हिला कर कह रहा था। नारायण की आवाज़ में वैसा ही हल्कापन था, जैसा आम-तौर पर ज्यादा शराब पीने के बाद लोगों की आवाज़ में आ जाता है। वह एक खास लापरवाही, आराम का-सा अंदाज़ "ज़रा हाथ लगाओ···" नारायण ने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा था-- "कुछ ज्यादा पी ली है। आज क्लब की सालाना मीटिंग थी, और···ज़रा हाथ लगाओ। अकेले मुझसे नहीं उठेगा···। राजू···अरे यार, तुम तो आफ़त हो गये। अरे उठ भाई··"

मैं राजू को उठवाने के लिए आगे बढ़ी थी। राजू बिल्कुल बेखबर सो रहे थे—वहां पिछली सीट पर।

"ज़रा अलग होइए" मैंने नारायण से कहा जो कार के अन्दर जाने का रास्ता रोके खड़ा था, राजू की ओर झुके हुए। उसने मेरी कही अन-सुनी कर दी और मैं किसी तरह अन्दर घुसी। अन्दर घुसते हुए मुझे ऐसा लगा जैसे नारायण मेरे सारे शरीर को सूंघने की कोशिश कर रहा है।

"उठाइये ना···" मैंने उसकी ओर मुड़कर कहा था।

राजू का आधे से अधिक वजन शायद मैं ही साधे रही थी और पूरे समय नारायण का राजू की कमर के गिर्द का हाथ कहीं मेरी साड़ी और ब्लाउज़ के बीच के नंगे शरीर से चिपक कर रह गया था। बमुश्किल राजू को मसहरी तक ले जाया गया और इस बीच रह-रहकर नारायण के हाथ और उंगलियों को मैं अपने शरीर के अलग-अलग हिस्सों पर महसूस करती रही—कमर, कूल्हों, सीने, पीठ—जैसे सब अनजाने में ही हो रहा हो।

"कोई परेशानी की बात नहीं," नारायण ने हाथ झाड़ते हुए कहा—"बस थोड़ी ज़्यादा हो गई है। दरअसल, मैं इलेक्शन में खड़ा हुआ था—फॉर दि क्लब-सेक्रेटरी। जीत की खुशी में···। सारे शहर के रईस, धंधे वाले लोग—बड़ा मजा आया। राजू या तो पट्ठा पी ही नहीं रहा था, या इतनी पी डाली कि उलट ही गया। हुस्न का भूत···! कार में बिठाना भी

मुश्किल हो गया। पता नहीं, किस-किस को क्या-क्या कहता रहा।"

कुछ रुक कर नारायण ने राजू की ओर देखा और फिर मुझ से पूछा।

"इफ यू डोन्ट माइंड, मैं बैठ कर एक सिगरेट पी सकता हूं ?" और बिना मेरे जवाब का इन्तज़ार किये नारायण ने पास ही कुर्सी पर बैठकर सिगरेट जलायी। मैं वहीं राजू के पास पलंग पर बैठी उनकी पीठ सहलाती रही थी।

"सिर्फ सो रहा है," उसने फिर मुझसे कहा था—"डोन्ट डिस्टर्ब हिम··· चलो हम लोग उधर ड्राइंग रूम में बैठते हैं।

न चाहते हुए भी मैं नारायण के पीछे-पीछे ड्राइंग रूम तक आयी और आकर सबसे पहले मैंने कमरे की मेन-लाइट्स का स्विच ऑन किया। तेज रोशनी में नारायण के चेहरे पर एक लम्हे को नागवारी का भाव तैरा, फिर दूसरे ही पल शायद नशे की दरियादिली में वह उसे अनदेखा कर गया। फिर उसने उठकर खुद ही बेड-रूम और ड्राइंग रूम को जोड़ते दरवाज़े का पर्दा खींच दिया।

"रोशनी अन्दर जा रही है," उसने आराम से कहा—"अभी जाग गया तो परेशान कर डालेगा।" फिर वह कुर्सी पर वापिस आकर बैठ गया था।—"पुरानी बिगड़ी हुई आदतें हैं, तुम तो जानती हो—ही इज एन् ओवर ग्रोन किड···"

नारायण की यह खास आदत थी। यह जानकर कि मेरी ज़्यादा स्कूलिंग इंगलिश में हुई थी और मुझे अंग्रेज़ी बोलते देख, उसने मेरे सामने अंग्रेज़ी का ज़्यादा से ज़्यादा प्रयोग एक नियम बना लिया था।

"ये नारायण मेरे सामने इतनी इंगलिश क्यों बोलते हैं ?" मैंने राजू से पूछा था।

"क्यों ?" चाहते हुए भी राजू अपने चेहरे पर आप ही आ गयी हल्की-सी मुस्कान को नहीं दबा सके थे।

"क्यों क्या ? अगर ठीक से अंग्रेज़ी नहीं बोल सकते तो जरूरत क्या है अपना मज़ाक बनाने की।"

राजू थोड़ी देर चुप रहे थे उसके बाद उन्होंने बताया था कि नारायण को बचपन से ही अंग्रेज़ी पढ़ने और बोलने का भूत सवार था

क्योंकि उसकी शिक्षा हिन्दी स्कूल में हुई, इसलिए, सिवाय इसके कि अंग्रेजी की जासूसी किताबें पढ़कर उसने कुछ फिकरे और सलेंग्स रट लिये हैं, जिन्हें वह मौके बेमौके इस्तेमाल करता रहता है। और वह भी वह सही तौर पर उच्चारण नहीं कर पता।

"अब है अपना-अपना शौक।" राजू ने कहा था—"वह शायद तुम्हारे सामने अपने आपको पढ़ा-लिखा साबित करना चाहता है। इसलिए कि तुम सुन लेती हो। सुधा—नारायण की पत्नी, वह तो मुंह पर ही मज़ाक उड़ा देती है।"

नारायण कुर्सी पर बैठा मुंह से धुएं के छल्ले बनाने की कोशिश कर रहा था।

"तुम दोनों को," उसने कुछ ठहर कर कहा था, फिर मेरी ओर देख-कर बोला था—"तुम वहां इतनी दूर क्यों बैठी हो ? आओ यहां पास आ-कर बैठो।"

और इससे पहले कि मैं कुछ सोच पाती, नारायण खुद उठकर मेरे पास आ-बैठा।

"मैं जाने क्या कह रहा…हां। तुम दोनों को इकट्ठे देखकर लगता ही नहीं कि ये लोग आपस में इतना लड़ते-झगड़ते होंगे। वैसे मैं समझता हूं…" नारायण कुछ क्षणों के लिए चुप होकर सोचता रहा—"राजू की हरकतें होती भी अजीब हैं। मैं तो पहले भी सोचता था कि किसी औरत से इसका निवाह होना कितना मुश्किल होगा। अपने विहेवियर में भी, इफ़ आई एम नॉट रांग, ही इज़ क्वाइट सिली।"—और नारायण ने मेरा हाथ अपने हाथों में ले लिया था—"लेकिन अब तुम लोगों का घर है, बच्चा है, इतने तमाशे की क्या ज़रूरत है ? उसे तो तुम जानती हो, हर एक के सामने रोना रोता रहता है। बदनामी तुम्हारी होती है।" और नारायण ने बहुत भावपूर्ण आवाज़ में कहा था— "दुख मुझे होता है। हां, हां, मैं किसी से कहता नहीं, लेकिन तुम्हें इस हालत में देखकर मुझे दुख होता है। अगर तुम समझदारी से काम लो तो, दियर इज आलवेज अ वे आउट—अ सेफ वे, अ पोलिटिकल वे…" उसने आवाज़ को बिल्कुल धीमे करते हुए लगभग मेरे कान में कहा था—"मैं हूं—तुम्हें खुश देखकर सोचो मुझे कितना अच्छा

लगेगा और राजू कुछ सोच भी नहीं पायेगा। तुम लोगों के रोज़ के झगड़े भी खत्म हो जायेंगे और फिर शायद राजू भी इधर से बेफिक्र होकर कुछ कर पाये।"

"आप मेरे लिये एक काम कर सकते हैं?" मैंने अपनी आवाज़ से किसी भी तरह का भाव न दर्शाने का प्रयत्न करते हुए कहा था।

"एक शर्त पर···" नारायण ने मेरे हाथों को ज़ोर से दबाते हुए कहा था—"तुम मेरी शर्त समझती हो ··बस इन अ व्हाइल, बस···" उसने अपना माथा मेरे कंधे पर टिकाने की कोशिश करते हुए कहा था—"और फिर इसमें ऐसी बुराई भी क्या है? दुनिया में ऐसा ही होता है। हम लोग कोई दुनिया से अलग तो नहीं? हां, तुम किसी काम का कह रही थीं?"

नारायण के दोनों हाथ मेरे शरीर पर आज़ादी से चलने लगे थे। पीछे ब्लाउज के भीतर उसकी उंगलियां रेंगने की कोशिश कर रही थीं और उसकी सारी हरकतों में एकदम तेज़ी-सी आ गयी थी जैसे वह बहुत जल्दी में हो।

खुद मैंने भी आवाज़ ही सुनी थी। कमरे की खामोशी में सहसा ही उभर कर गायब हुई तमाचे की आवाज़। कुछ ही क्षणों में सब कुछ साफ़ हो गया था। नारायण पास ही सोफे पर हक्का-बक्का-सा बैठा था और उसकी आंखों की चमक कुछ पल को बेहरकत-सी हो गयी थी। उसकी सारी मुद्रा ऐसी थी जैसे उसे उसी फ्रेम में फ्रीज़ कर दिया गया हो। मेरी हथेली और उंगलियों में जो सनसनाहट थी, वह धीरे-धीरे कम होती जा रही थी। मेरा साड़ी का पल्ला नीचे फर्श पर पड़ा हुआ था और ब्लाउज़ अस्त-व्यस्त हो गया था। पता नहीं, कब सब कुछ हुआ, कैसे हुआ?

बारह

दोबारा मैं राजू की आवाज़ सुन कर चौंकी। वह अन्दर बेड रूम में जागने के बाद आवाज़ें दे रहे थे। मैं ड्राइंग रूम में अकेली थी। नारायण जाने कब चला गया था।

राजू बिस्तर के किनारे बैठे चप्पलें पहनने की कोशिश कर रहे थे। अब भी वह इतने नशे में थे कि पैर से चप्पलें टटोलने में लगे थे, जबकि चप्पलें दूर कोने में रखी हुई थीं। मैंने चुपचाप ले जाकर उनके पैरों के नीचे रख दी थीं।

"कौन ?" उन्होंने बन्द आंखें खोलकर मुझे शायद पहली बार देखा था। उनके पास से ही शराब का भपका उठ रहा था।

"कमाल है !" कहकर वह जोर से हंसे थे—"ये यहां कैसे ?" वह सोचते हुए खो गए थे। फिर चप्पलें वैसे ही पड़ी छोड़ कर वह खड़े हुए थे या खड़े होने की कोशिश में उन्होंने झोंका खाया था।—"ज़रा उठवाना यार," उन्होंने फिर कहा था—"साला, गुर्दा फटा जा रहा है।" मैं उनको बाथरूम में ले गयी थी। खुद दो कदम चलना भी उनके लिए दूभर हो रहा था।

"तुम चलो, मैं कर लूंगा," उन्होंने ज़ोर से हाथ हिला कर मुझ से कहा और मैं बाथरूम के बाहर खड़ी होकर उनका इन्तज़ार करने लगी। काफी देर तक कुछ भी आहट न सुनायी देने पर मैंने अन्दर झांका। राजू वैसे ही खड़े हुए थे। फिर मैंने उन्हें पेशाब कराया और वापस मसहरी तक लेकर आयी।

"राजू, कैसी तबीयत है ?"

"नहीं, कुछ नहीं," लेटते-लेटते उन्होंने कहा था—"ज़रा सर घूम रहा है।" वह दो पल को लेटे रहे, फिर उठकर बैठ गए।—"नारायण छोड़ कर गया था ? कितनी देर हो गयी ?" और एकदम उनके मुंह में न जाने

कहां-कहां की गालियां आ गयी थीं। वह हवा में ही पता नहीं किस-किस को सम्बोधित कर-करके गालियां दे रहे थे और उसके बाद हंसी का दौरा! राजू बिल्कुल दीवानों की तरह आप ही हंसते रहे थे।

"तुम समझती हो मैं नशे में हूं," उन्होंने मेरी तरफ अस्थिर नज़रों से देखते हुए कहा—"तुम्हारी नजरों को देख कर बता सकता हूं, तुम गलत समझ रही हो।" कहते हुए राजू फिर बिस्तर पर लेट गए और आंखें बन्द कर लीं—"साले पिस्सू की औलाद, चार पैसे हाथ क्या आ गये, अपने को पुश्तैनी नवाब समझने लगे हैं। क्लब्स के मेम्बर बन गये, कारों पर चढ़ने-उतरने लगे, देखते ही देखते जिन्हें कमरबन्द की गांठ और धोती का पल्लू खोंसना नहीं आता था, आज साले सूट पहनने लगे। नई-नई हज़ारों रंगों की टाइयां बांधने लगे। और साले दारू पियेंगे। जिनकी आंखें पानी ऐब्सोर्ब करने के काबिल नहीं, साले दारू पियेंगे।" राजू एक पल को रुक कर हंसे और फिर रोकने की कोशिश के बावजूद जैसे उन पर हंसी का दौरा-सा पड़ गया—"तुम समझती हो, मुझे ज़्यादा शराब नहीं पीनी चाहिए? नहीं, तुम समझती हो मैं ज़्यादा शराब पी ही नहीं सकता! क्यों नहीं पी सकता?" वह एकदम चीखे थे—"बताओ, तुम मुझे क्या समझती हो?" नशे में राजू के गले की ताकत कई गुना बढ़ गयी थी—"अंगुल? अंगुल क्या मेरा बाप है, जो जब देखो तब उसका नाम लेकर डराती रहती हो? मैं किसी से डरने वालों में से नहीं हूं। वहां-वहां जाओ, आज कितनों की नींद उड़ा दी मैंने। नारायण से पूछो, सब साले चूहे के बच्चों की तरह बिलों में दुबके पड़े होंगे। वेल टू डू एण्ड ऐफ्लूवेन्ट ऑफ द सिटी! सेठ-बनिये! इंडस्ट्रियलिस्ट्स! साले किराये के टट्टू! लोगों को मिल के बैठने का शौक है। बड़े-बड़े महलों में जो अब अंधेरे में डूबे रहते हैं, जिनके सामने से निकलने में कल तक इनकी आंतें हलक को आती थीं, वहां घुसने का शौक है! उन अंधेरों में ये हरामजादे रोशनी करना चाहते हैं! उन लॉनों को जिनकी दूब बह गयी, मिट्टी निकल आयी है, ये फिर से हरा करके उस पर टेबिल्स जमाना चाहते हैं! टेबिल्स एण्ड चियर्स! खामोश दरख्तों की टहनियों पर सजे बिजली के बल्बस और टेबिल्स पर जमी हुई कीमती क्राकरी, चमकते स्पून्ज, नाइव्स, फोक्स-सफेद कपड़े पहने गुलाम वे

"यस सर," इनकी तो···। तन्दूरी मुर्ग, चाइनीज़ फूड, काकटेल्स। तो फिर···" राजू एकदम दहाड़े थे—"कोई माई का लाल ये सब खुद क्यों नहीं करता ? कान्ट्रिब्यूशंस ! रहे न, फ़कीर के फ़कीर। मिस्टर नारायण, मिस्टर राजेन्द्र कुमार इज योर गेस्ट ? हां, मैं उनका गेस्ट हूं, पर जाने कितनी बार तुम जैसे कुत्तों का, न जाने कितने तुम जैसे कुत्तों का पेट अकेले मैंने भरा है। तुमने क्या खिलाया था ? पन्द्रह तरह की डिशेज थी, कुछ शरावें थीं, जिनके लिए हर आदमी, ऐवरी मेम्बर आफ द क्लब बिल पे हिज इंस्टालमेंट एण्ड ऑलसो हिज गेस्ट। मैंने किया है—एक-एक डिनर पर आठ-आठ, दस-दस हज़ार का बिल अकेले मैंने पुट किया है। सब कमीने उन दिनों को भूल गए···। पूछते हैं कि मैं किसका गेस्ट हूं ? मैं किसका गेस्ट हूं ?" और राजू एकदम किसी बच्चे की तरह बिलख पड़े। वह फूट-फूट कर रो रहे थे और ऊंची आवाज़ में जाने क्या-क्या कह रहे थे।

थोड़ी देर बाद राजू तकिये में ही मुंह दिए हुए सो गए। कमरा फिर खामोश था। सिर्फ कुछ-कुछ समय के बाद राजू की सिसकी खामोशी में उभरती थी और अंधेरे में डूब जाती। सहसा मैं किसी तकलीफ़ से बेकल हो उठी थी। कुछ ही क्षणों में मुझे लगा था, वह तकलीफ़ राजू की तक-लीफ़ का मेरा हिस्सा नहीं थी। न वह उस क्रोध का ही अंश थी जो कुछ क्षणों को नारायण के लिए मेरे भीतर उबला था। इस अंधेरे और खामोशी में उन तमाम चीज़ों को मैं जैसे अलग खड़े होकर देख सकती थी। यह तकलीफ़ मेरे अपने अस्तित्व का एक अंश थी। मुझे बेचैन किए डाल रही थी।

कल तक, मैंने जैसे हांफते हुए से सोचा था, कल सवेरे तक मुझे भूखे जागना है।

तेरह

अगली सुबह एक नयी दिनचर्या से शुरू हुई। मैं थकी-हारी-सी बिस्तर पर पड़ी रही थी और उजाला फैलने के साथ ही राजू जाने कैसे जाग गये थे। उन्होंने चाय बनायी और मुझे बिस्तर पर ही आवाज़ दी जैसे मैं सो रही हूं।

"यार, रात कुछ पता ही नहीं" उन्होंने अपनी ख़ास शर्मिन्दा-सी मुस्कान के साथ मेरे पास बैठते हुए कहा था—"क्या नारायण छोड़ गया था ?"

फिर थोड़ी देर चुप रहने के बाद—

"सर भारी हो रहा है। अब तुम तो खैर मानोगी नहीं, मैं कितना मना करता रहा। मैं तो क्लब जाना ही नहीं चाह रहा था, वह साला माना ही नहीं। फिर शराब, पर...मैं बराबर कहता रहा था कि मुझे पीने पर मजबूर मत करो, मैं बहक जाऊंगा। नहीं माने साले। जाने क्या-क्या कर गया होऊंगा ? किस-किस से क्या-क्या कह दिया होगा ?"

फिर जल्दी-जल्दी राजू ने ही सुबह का नाश्ता तैयार किया था। परांठे तले, ऑमलेट बनायी और इस तरह मुझे खिलाने-पिलाने की कोशिश करते रहे जैसे छोटे बच्चे रूठे हुए बुजुर्गों को मनाते हैं। फिर नहाने-धोने के बाद उन्होंने नारायण का इन्तज़ार किया। वह नहीं आया था तो राजू ने फोन करने के विचार से रिसीवर उठाया, और फिर कुछ सोचकर वापस रख दिया था। फिर उस दिन राजू दूकान पर गये ही नहीं थे। दोपहर को थोड़ी देर के लिए वह घर से गायब हुए और लौटे तो क्वालिटीज से खाने के थैले लिए। और अंशुल के लिए बहुत सारी केडब्रीज़ की टाफ़ीज और बिस्कुट्स।

दोपहर के खाने के बाद—

"यार, तुम बहुत थकी-थकी-सी लग रही हो ? क्या बात है

हारे हाथ पैर दाव दें।"

और राजू मेरे पैर दबाते रहे थे—मेरे हज़ार मना करने के बाद भी।

अगले दिन भी नारायण नहीं आया, तो राजू बस से दूकान पर गये और दोपहर को ही कोई उन्हें स्कूटर पर छोड़ गया।

"क्या नारायण थे ?" जाने किस विवशता के कारण मैंने पूछा था।

"नहीं।" राजू के कहने के अंदाज़ में थकान थी। फिर कुछ देर बा वह बोले थे—"लगता है, कोई नारायण से मेरे सम्बन्ध खराब करान चाहता है।"

मैं चुपचाप सुनती रही थी। कुछ क्षणों बाद वह फिर बोले थे—"साले को पता नहीं क्या हो रहा था आज ? कल से मैं भी नहीं जाऊंगा।" कहते हुए राजू के स्वर में थकन का भाव और भी गहरा हो गया था।

मगर अगली सुबह नारायण आ गया। घर के अन्दर तो वह नहीं आया, बाहर ही दोनों में काफ़ी देर तक पता नहीं, क्या बातें होती रही और अन्ततः राजू नारायण के साथ चले गये थे। और फिर उसी शा वापिस आकर राजू ने कहा था—"नहीं यार, नारायण के बारे में मे ख्याल ग़लत था।"

"कैसा ख्याल ?" मैंने आप ही आप पूछा था।

"यही कि···अब छोड़ो। लेकिन वह ऐसा है नहीं। असल में उस परसों दोपहर को मुझ से बिल्कुल इस तरह बोला जैसे मैं उसके दो का गुलाम हूं। मैंने कहा कि 'बात किससे कर रहे हो ? तुम समझते हो कि तुम्हारे चन्द रुपये इधर से उधर करके मैं अमी जाऊंगा ? और चलो, मैं कहता हूं मैंने तुम्हारे पैसे इधर से उधर कि लो जो तुमसे बने। तुम्हें शर्म नहीं आती, इतनी घटिया बात करते उसके कुछ बोलने से पहले ही मैं दरवाज़ा ज़ोर से बन्द करके निक फिर एक पहचान वाले इधर आ रहे थे, उनसे कहा मुझे घर छ़ा आज माफ़ी मांग रहा था कि मेरा मतलब वो नहीं था। मैंने भूल जाओ, कभी-कभी न चाहते हुए भी बेवकूफ़ी हो जाती है

बहरहाल, नारायण की ओर से राजू का दिल फिर से

हो गया था, बल्कि मुहब्बत कुछ और बढ़ ही गयी थी। नारायण के लिये वह मेरे मुंह से भी कुछ बुरा सुनना पसन्द नहीं करते थे।

मुझे इसका अन्दाज़ा नहीं हो पाता था कि कुल आमदनी कितनी है? राजू की सारी आमदनी का जरिया नारायण ही बना हुआ था। हम लोगों का खाना-पीना, अंशु का खर्चा—सब कुछ इसी से पूरा हो रहा था। इस बीच मम्मी ने भी अपनी ओर से कुछ पैसे राजू को दिये थे। राजू ने न केवल मम्मी की ओर जाना बन्द दिया था, वह संभवत: कोशिश यही करते थे कि उनका मम्मी से सामना ही न हो।

"मैं बाहर निकल रहा था कि मम्मी ने आवाज़ दी।" राजू ने बताया था—"क्या पता, दरवाजे के पास खड़ी क्या कर रही थीं? मैं तो यार एकदम···ये इतने-से दिनों में मम्मी क्या हो गयीं?" राजू सिर पकड़ कर बैठ गये थे—"मन से तो वह पिताजी की मौत के बाद ही अजीब हो गयी थीं, बिल्कुल चुप, न बोलना न मिलना-जुलना। दिल चाहा तो खूब हंस भी ली, नहीं तो दीदी के बच्चों तक की ठुकाई···मगर अब तो···" वह एक पल को चुप हुए थे—"खैर, मम्मी ने ये पैसे दिये हैं और कहा है कि जब तक मैं कुछ कर नहीं रहा, बाहर की दूकानों का किराया मैं ले लिया करूं।"

शुरू में परिस्थितियों के बदलने के कारण जो शर्म का अंदाज़ राजू की रोज़ की जिन्दगी में रहने लगा था, उससे मुक्ति पाने में वह अब काफी हद तक सफल हो गए थे।

"यार, क्या बात है? यू आर लुकिंग काइंड आफ डिफ्रेन्ट!" उस शाम राजू ने मुझ से कहा था। मेरा दिन-भर बल्कि पिछले तीन दिन एक प्रकार के मानसिक तनाव में बीते थे।

"लगता है सारी मुसीबतें इकट्ठा टूट पड़ी हैं!" मैंने अपनी ओर से पूरी-पूरी सहजता से बात करने की कोशिश की थी।

"क्यों? बात क्या है?" राजू एकदम चौकन्ने हो गए थे—"क्या पूना से कोई चिट्ठी आयी है?"

"खैर वह तो आई ही है। पप्पू की चिट्ठी थी। कुछ नहीं, वही हो रहा है जिसकी उम्मीद थी। उस लड़की जमीला की शादी, तुम्हें मालूम तो

है, स्टेट में उसका कजन है, उससे तय थी। जमीला की शादी उसके घर वाले जल्द से जल्द कर रहे हैं। फ़िलहाल उसे पूना से लखनऊ भेज दिया है, उसके मामा के यहां। शी हैज रिटन अ लेटर टू पप्पू—यही कि यह नहीं हो सकता। ही मस्ट वेट फॉर हर ! और वही अब कुछ—द क्रेजी लॉट दे आर।"

राजू बहुत गौर से सब कुछ सुन रहे थे और बहुत उत्साहपूर्वक 'अच्छा-अच्छा' कर रहे थे।

"तो फिर ?" उन्होंने बेचैनी से पूछा था—"अब क्या होगा ?"

"गॉड नोज !" मैंने बात को खत्म करने के-से अंदाज़ में कहा था—"मैं तो पप्पू के मामले में न बोलने का बहुत पहले तय कर चुकी हूं। वह परवाह किस की बात की करता है। और जमीला ! सब कहने की बातें हैं। कल शादी हो जायेगी, पति के साथ स्टेट चली जायेगी, पप्पू जी आंसू पोंछते रह जायेंगे। और फिर पप्पू हैज नाट फॉलिन इन लव फार द फर्स्ट टाइम। इट इज हिज हॉबी।"

बहरहाल, राजू को सोचने के लिए कुछ मिल गया था। उनके हाथ में अखबार था, लेकिन मुझे मालूम है उनका दिमाग वहीं उलझा हुआ था—पप्पू और जमीला में।

"सुनो," मैंने राजू की कोहनी पकड़ कर हिलाते हुए कहा था, राजू एकदम उछल कर बोले थे—"हां, क्या है ?"

"सुनो, आई हैव वेटेड फॉर···फाइव सिक्स डेज···पता नहीं कुछ गड़बड़ लगती है।"

"क्या ?···क्या हुआ ?" राजू एकदम होश में आ गये थे—"फाइव, सिक्स डेज ?···किसका ?" और फिर एकदम जैसे सारी बात उनकी समझ में आ गयी थी—"अच्छा···!" उन्होंने न्यूजपेपर नीचे डाल दिया था, और उठकर सीधे बैठ गये थे।—"तुम्हें पहले ही बताना चाहिए था।" कुछ देर बाद उन्होंने कहा था—"पांच छः दिन ! ये और मुश्किल हुई।"

उस रात राजू और मैं एक साथ इस तरह लेटे रहे, जैसे किसी मजबूरी ने हमको एक ही बिस्तर पर ला डाला हो। बिजली, बादल, पानी गिरने की आवाज। सरे-शाम से ही पानी टूट कर गिर रहा था।

"क्या सो गये ?" मैंने दाहिने ओर गर्दन मोड़ कर राजू से पूछा था।

"नहीं।"

"क्या सोच रहे हो ?" मैंने हाथ बढ़ा कर उनका कंधा छुआ था।

"सोचने को रखा क्या है ?" उन्होंने लम्बी सांस लेकर कहा—"मगर मेरी समझ में नहीं आता कि यह हो कैसे गया ? अब तो तुम्हें छूने से पहले शायद उंगलियों पर भी रबर चढ़ाना पड़ा करेगा। और फिर मुझे तो याद ही नहीं आता, ऐसा हो कैसे सकता है ? मैंने कितने प्रीकॉशन्स लिये हैं—उसके बाद भी ?"

"हमेशा ही तो प्रीकॉशन्स नहीं लिये। मैं तो ख़ुद कहती रही हूं, मगर…"

"कब नहीं लिये ? तुम समझती हो सारी फिक्र ले दे के बस तुम्हीं को है ? ऐसा है तो कल से अलग-अलग सोया करेंगे।"

"ठीक है शायद यही करना पड़ेगा।"

थोड़ी देर बाद—

"अरे यार, ठीक तो है !" राजू एकदम बिस्तर पर उठकर बैठ गये थे।—"मेरा दिमाग तो बिल्कुल कबाड़ख़ाना हो गया है। दिन-भर पाइपों के गाज,कीमतें, और हार्ड-वेयर के काट-कबाड़े के बीच रह कर आयेगा भी क्या दिमाग में ? यार, माफ करना। तुमने बुरा तो नहीं माना ?" एकदम राजू मुझसे सट गये थे—"ये मेरा दिमाग।" उन्होंने अपना माथा ठोका था—"तुम ग़लत तो नहीं समझी थीं ना ? यार, उस रात…तुम्हें मालूम है ना…"

चौदह

उस रात ! मुझे मालूम था। वह रात भी एक ऐसे [illegible] दूसरा

सिरा थी जो इन दिनों हमारे जीवन का मामूल बन गए थे। राजू साढ़े आठ बजे घर लौटे थे, थक कर पसर गए थे। मुझे खाना निकालने के लिए उठते देखकर उन्होंने मना किया था और खुद किचिन में चले गए थे।

खाना खाते-खाते राजू के हाथ एकदम रुक गए थे। हाथ का निवाला हाथ में ही दबा रहा था। फिर उसे प्लेट में ही रखकर वह अन्दर लपके और उस डायरी के पन्ने पलटते हुए बाहर आए थे जो इन दिनों चौबीस घण्टे उनकी जेब में रहती थी।

"अपना खुद का मामला अलग था" राजू कहते—"हज़ार, पांच हजार भी अगर इधर-उधर हो गए तो कोई बात नहीं। अब नारायण का मामला है। मालूम है, पिताजी हम से बचपन में क्या कहा करते थे ? हिसाब जौ-जौ, बखशीश सौ-सौ। अब खैर, बख्शीश तो क्या…! मगर सच है ! बिल्कुल सच ! हिसाब तो रखना ही चाहिए—'रियल इकॉनमी कन्सिस्टस इन सेविंग्स, नॉट अर्निंग्स।' और अपना जीवन" वह हंस कर कहते—"अपना जीवन तो इसी महाकाव्य का एक पाठ है—कम खर्चा, ज्यादा जियो।"

इस डायरी में इन दिनों राजू पाई-पाई का हिसाब लिखने की कोशिश करते थे।

राजू डायरी के पन्ने पलट रहे थे, लेकिन उनका दिमाग कहीं और था।

"खा चुके ?" मैं उनके पास वाली कुर्सी पर जाकर बैठ गयी थी।—"क्या कुछ हिसाब में गड़बड़ हो गयी ?"

राजू ने उत्तर नहीं दिया था, वैसे ही बैठे रहे थे। फिर तेजी से उठ कर उन्होंने हाथ धोए, तौलिए से जल्दी-जल्दी पोंछे—"सुनो, मैं अभी आता हूं।" कहते हुए बाहर निकल गए।

एक घण्टे बाद जब राजू लौटे तो उनके हाथों में गुलाब के दो बड़े-बड़े गुलदस्ते थे।

"ये क्या सूझ गयी ?" मैंने कहा था।

"क्या कोई नई बात है ?" राजू ने आसानी से कहने की कोशिश

की—"भूल गयीं ? कोई भी शाम ऐसी होती थी कि बिना तुम्हारे फूलों के आ जाऊं ? मालन का भी यह हो गया था कि इन्तजार करती थी, चाहे रात के दो ही क्यों न बज जायें। गजरे, मालाएं—क्या-क्या और कैसे फूल गूंथती थी। और जैसे वह खुशबू तुम्हारा ही एक पार्ट हो गयी थी। फूल लेकर बाजार से घर तक पहुंचना मुश्किल हो जाता था। नाक से अन्दर जाकर साली जाने कहां-कहां हिट करती थी। रास्ते में दिल चाहता था, सामने वाली मोटरों पर गाड़ी चढ़ा दूं, आगे निकल जाऊं, तुम तक पहुंच जाऊं" राजू ने ठंडी सांस ली थी—'खैर !" और वह चुप हो गए थे।

"ऐसा करो, चलो मेरे साथ आओ।" वह मुझे खींचते हुए अन्दर लाए थे, कपड़े उलीच कर अपनी पसंद की साड़ी ब्लाउज़ निकाला था और दस मिनट में हम घर के बाहर थे।

"अंशुल ? अरे ठीक है यार···" राजू ने मुझे सोचने का मौका ही नहीं दिया था। उन्होंने एक टैक्सी रोकी थी और हम रेडियो-स्टेशन के पास उतरे थे। टैक्सी से उतरते ही हल्की हल्की बूंदाबांदी शुरू हो गयी थी।

"मैं पूछती हूं, चक्कर क्या है ?" मैंने झल्लाई-सी आवाज़ में पता नहीं कौन-सी बार पूछा था।—"इज समथिंग रांग विद यू ?"

"अब ये पूछने का वक्त गया। अब तो जहां मैं वहां तुम। इन्तजार, कौन, अब हम तो घसीट के ले जाने वालों में से हैं···"

एकदम अन्धेरा था। सड़क की रोशनियां गायब और आसमान घने बादलों से अटा हुआ था। खामोशी और दूर आगे कहीं अंधेरे में किसी ऊंचान से पानी के गिरने की आवाज़। सडक उघडी हुई थी और रह-रह कर हमारे पैर गिट्टियों और पत्थरों से टकरा रहे थे। पानी की बूंदें तेज़ हो गई थीं। राजू मुझे घसीट के ऊपर खींचे लिए जा रहे थे। इसी पहाड़, इसी घाटी के बाजू में कई सौ फीट नीचे तालाब था, दूर शहर बसा हुआ था। पानी के किनारे-किनारे हल्की फुहार ने धुंधलाई-सी रोशनियां। राजू कोई गीत गुनगुनाने लगे थे।

"वाट ए वेदर टू कमिट सुसाइड !" मैंने फिर झल्लाई

में कहा था—"आप आखिर चलना कहां चाहते हो ?—क्या बात है ?"

राजू एकदम रुक गए थे ।

"कभी तो ऐसा लगने दो कि जो मैं चाहता हूं वह हो रहा है। वहां ऊपर ले जाकर क्या मैं तुम्हें खा जाऊंगा ? नीचे तालाब में धक्का दे दूंगा ?" राजू एकदम बुझ गए थे—"यही है ! जहां हम चाहते हैं कि कोई पूछे, हम से सवाल करे, वहां किसी को फुर्सत नहीं मिलती, जहां हमारी खुशी लोगों की खामोशी से पूरी हो सकती है—वहां सब ! सब को ही देख लिया।" वह एकदम वापिस मुड़ गए थे—"चलो, वापिस चलते हैं।" और मेरा हाथ खींचते ढलान उतरने लगे थे ।

पन्द्रह-बीस मिनट बाद हम लोग एक पहाड़ी गुफा में थे, मैंने राजू को मना लिया था ।

"ज़मीन कितने नीचे है तुम्हें इस वक्त अंदाज़ नहीं होगा···और बाहर अच्छा-खासा पानी गिर रहा है, लेकिन अन्दर एक बूंद नहीं आएगी वह देखा···" नीचे, बहुत नीचे अंधेरे में रेंगती रोशनियां थीं और बहुत धीमे-धीमे हम तक पहुंचती ट्रक की आवाज़ें ।

"यह ट्रक गिट्टी ढोते हैं। दो-तीन मील अन्दर पत्थरों की कुवेरी है। एक जमाने में पिताजी ने ली थी। शर्मा करके एक आदमी था, वह मेनेज करता था। पिताजी की डेथ के बाद सब कागजात गड़बड़ कर दिए।"—राजू ने माचिस की तीली से कैंडिल जलायी थी ओर एकदम हमारे आस-पास पत्थर की हदें बन गयी थीं—"तुम्हें मालूम है···जब मैं टैंथ में पढ़ता था, वह जो जीजी रहती है ना अपने घर के पास, उनका लड़का और मैं—· हम दोनों ने स्कूल से भाग कर जिन्दगी में पहली बार व्हिस्की यहीं पी थी। उसके बाद···मुझे यह जगह बहुत अच्छी लगती है। लगता है, अगर हम सिर्फ कपड़े उतार दें तो अपने पूर्वजों की दुनिया में पहुंच सकते हैं।"

हवा के झोंके रह-रह कर मोमबत्ती की लौ को कंपा जाते थे और हम दोनों के साये, लहराते हुए उन पत्थर की दीवारों पर डोल जाते। राजू ने मेरा हाथ पकड़ा था और गुफ़ा के मुंह पर ले आए थे। हमारे पीछे वह पहाड़ी घाटी थी जिसको पार करते हुए हम गुफ़ा तक पहुंचे थे। और पहाड़ी चोटी पर बने कॉलिज के लड़कों के हास्टिल्स दिखायी दे रहे थे।

"आंखें बन्द करो !" अन्दर वापिस आकर राजू ने कहा था। मैं मोमबत्ती की रोशनी में अधखोयी-सी उनकी ओर देखती रही थी। राजू ने मुझसे नज़रें नहीं मिलायी थीं—"अच्छा रहने दो !" उन्होंने अपनी जेब से एक बोतल निकाली, कुछ सोचते हुए उसकी सील तोड़ने की कोशिश की। कुछ प्रयत्न के बाद वह सील तोड़ने में कामयाब हो गए। बिना मुझसे आंख मिलाये उन्होंने बोतल मुंह से लगायी थी, दो-तीन बड़े घूंट लेने के बाद थोड़ी देर खांसते रहे, और जलती हुई कैंडिल से सिगरेट सुलगाई, फिर वह चुपचाप बैठ गए।

मोमबत्ती की थरथराती रोशनी और खामोशी। सिर्फ बाहर पत्थरों और पत्तों पर गिरती पानी की बूंदों की आवाज़ थी। अंधेरा ! मुझे हमेशा ऐसा लगा है कि अंधेरा, खामोशी के साथ मिलकर सहनीय हो जाता है। अकेली खामोशी और केवल अंधेरा दोनों की कल्पना ही बड़ी विचित्र-सी लगती है। लगता है खामोशी और अंधेरा एक ही चीज़ के दो रुख हैं। अगर खामोशी का कोई रंग होता है तो मुझे विश्वास है, वह काला होगा —अंधेरा होगा। और अगर अंधेरे की नब्ज़ महसूस की जा सके तो वह खामोशी होगी।

राजू मुझे थोड़ी-सी लेने को मजबूर कर रहे थे। —"बस जरा-सी…" वह कह रहे थे और बोतल मेरे मुंह से लगा दी थी। मैंने बिना इंकार किए पहला घूंट लिया था और मुझे उबकाई आते-आते रह गयी थी। फिर दूसरा-तीसरा। एक बार कॉलिज कासेंट्रेटिड ऐसिड मेरी हथेली पर गिर गया था और देखते ही देखते खाल जल गयी थी, जख्म पड़ गया था। मैंने शराब का एक और घूंट लिया। अब सब ठीक था। सीने पर छाले पड़ जायें। अंशुल ? ज़्यादा से ज़्यादा दो-चार घंटे रोता रहेगा। नहीं अब ठीक था।

'तुम तो कमाल कर देती हो, कभी-कभी"—राजू फटी-फटी नज़रों से मेरी ओर देख रहे थे—"अरे बाबा, मैंने इतनी बहुत-सी कहा था। तुम्हें इतनी पीते देखकर तो मेरा नशा उतर खीजी-सी हंसी के साथ कहा फिर कुछ रुक कर फ़ीलिंग आल राइट ?"

"परफेक्ट।" मुझे अपनी ही आवाज़, बहुत दृढ़ और कहीं दूर से आती लगी थी।

"कल मैं नारायण से कह दूंगा, जल्दी घर आ जाऊंगा। शाम को हम लोग फ़िल्म देखने चलेंगे।"

"तुम्हारी सेहत दिन-ब-दिन गिर रही है, कल डाक्टर मजुमदार को…"

"एक बहुत अच्छी साड़ी देखी थी कल बाजार में। नारायण की बीवी को बाजार में कुछ काम था। नारायण को फुर्सत नहीं थी तो मेरे सिर पड़ गयी। इतनी ज़ोरदार साड़ी—मैंने खरीद ही ली थी फिर सोचा तुम्हारे साथ जाकर…मेड फॉर यू…"

राजू दूर बैठे बातें किये जा रहे थे।

मैंने साड़ी का पल्ला उतारा। अपनी जगह खड़े होकर साड़ी की परतें एक-एक करके अलग कर दी थीं। राजू के बोलने की रफ्तार में कमी आ गयी थी। वह जगह-जगह अटकने लगे थे। मैं फिर बैठ गयी थी।

"यार, साफ-साफ बताओ," राजू ने कैंडिल की ओर देखते-देखते एक पल को मेरी ओर देखा। शराब का एक और घूंट लिया था—"तुम," वह एक पल को फिर रुके थे—"तुम मुझे माफ़ कर सकती हो?"

तब मैंने धीरे-से ब्लाउज के बटन खोले थे।

"क्या कर रही हो?" राजू ने मुझे ताकते हुए कहा था।

"कितनी गर्मी है!"

"गर्मी? ऐसी गर्मी तो नहीं," कहकर उन्होंने फिर सिगरेट सुलगायी थी। इतनी देर में मेरे जिस्म के कुल कपड़े उतर चुके थे।

"ऐसे मौसम में दिल चाहता है, मैं दूब होती…" पता नहीं मैं वही कह रही थी जो कहना चाहती थी या…या बहकने लगी थी।

"तुमने मेरे सवाल का जवाब नहीं दिया?"

"कैसी माफ़ी राजू?" शर्ट के अन्दर उनका दिल जोर से धड़क रहा था। मैंने राजू को वहीं लिटाया, उनके कपड़े उतारे थे।

औरत और मर्द में शायद सबसे बड़ा अन्तर यही होता है कि एक सीमित हद तक औरत पत्थर होती है। लेकिन इस नाजुक हद को उलां-

घने के फ़ौरन बाद ही यह पत्थर मोम में परिवर्तित हो जाता है। मोम—जिसका अर्थ हर आग में पिघलना होता है। इस हद से पहले हर आदमी की औरत के लिये अलग-अलग पहचान होती है—इस सीमा को उलांघने के बाद हर आदमी औरत की अपनी पहचान का हिस्सा बन जाता है। हर स्त्री के दिमाग के अंधे खानों में जन्म से लेकर समझदारी तक जो छोटी-छोटी, बामतलब, बेमतलब बातें जमा होती रहती हैं, वह शायद एक मर्द की रचना करती हैं। कोई भी हो सकता है। एक खास समय पर एक ख़ास फ़ासला तय करने के बाद, हर पुरुष, स्त्री के लिए एक ही होता है। हर बार उस ख़ास, फासले को तय करने के बाद राजू मेरी आंखों से ओझल हो गए हैं और मैं उस काल्पनिक पुरुष के साथ आगे चली गयी हूं। उन क्षणों में सिर्फ एक एहसास रहा है जो बाद में सोचने पर राजू हो जाता है—कोई भी हो सकता है। पुरुष की स्त्री की तरह शायद ऐसी कोई सीमा नहीं होती। वह या तो पत्थर होता है या मोम। वह जब चाहे अपने आपको खींच कर बाहर ला सकता है, अपने को रोक सकता है।

राजू मेरे पास लेटे हुए थे और मैं चाहती थी, इस बार मैं वह सब उनके साथ करूं जो अभी तक वह मेरे साथ करते आए थे। पता नहीं क्या था जिसने राजू को उन्हीं पत्थरों जैसा बेजान कर दिया था। मेरे हाथ, मेरे होंठ, मेरा जिस्म धीरे-धीरे तपने लगे थे। पता नहीं, मैं जैसे एक नागिन थी जो मुर्दा नाग में जान डालना चाहती थी, और नाग! वह जिन्दा हो हो सकता था, अभी कहीं उसमें जान अटकी हुई थी। सिर्फ कुछ शब्द थे जो रह-रह कर उसके हलक में फड़फड़ाते थे।—"नहीं, कह दो तुमने मुझे माफ़ कर दिया। मैं कमीना हूं, कुत्ता हूं, मैं खुद को कभी माफ़ नहीं कर पाऊंगा। मैं भूल कैसे गया था? मुझे तो हफ्तों पहले से ख्याल था, याद था" वह कहे जा रहे थे—"मैंने क्या-क्या प्लान बनाए थे? और बर्थ-डे को ही ऐसा भूला कि आज··· आज याद आया? कह दो माफ़ कर दिया!"

मैं बिल्कुल थक चुकी थी।

क्या कुछ भी माफ़ किया जा सकता है? क्या दो शब्द कह देने से हमारे सारे ख्याल और अन्देशे अपनी बुनियाद खो देते हैं?

कर देने से राजू हल्के हो जायेंगे ? उन्हें विश्वास है कि मैं सचमुच भूल जाऊंगी ? कहीं, कुछ तो ज़रूर होता है हमारे, चीज़ों, बातों और घटनाओं के भूलने के पीछे। हम लाख सिर पीटें, यह दर्शायें कि सिर्फ़ इत्तिफाक— लेकिन इत्तिफाक के पीछे भी तो कुछ होता है। कहीं कोई चीज़ हमें इस बात की इजाजत दे देती है कि भूल जाओ या भूला जा सकता है, और हम न भूलते हुए भी चीज़ों की तरफ से कुछ देर के लिए अनजाने बन जाते हैं। भूलना ?—नहीं, मैं समझती हूं जिन चीज़ों को हम भूलना नहीं चाहते, उन्हें हम कभी भूल भी नहीं सकते। क्या राजू रिज़्वी को भूल सकते हैं ? अगर रिज़्वी राजू के सामने आए, हाथ जोड़े, माफ़ी मांगे तो राजू उसे माफ़ कर देंगे ? क्या मैं—क्या मैं खुद रिज़्वी को भूल सकती हूं ?

और धीरे-से मेरा दिमाग उस हार में उलझ गया था।—वह बड़ा-सा दहकता-सा सुर्ख रंग का पत्थर मेरे नग्न शरीर पर···उस सुनहरी चेन के सहारे मेरे वक्ष पर टिका हुआ-सा बड़ा सुर्ख पत्थर जो छूने पर कितना सर्द था। पर मुझे मालूम है वह अन्दर-ही-अन्दर दहक रहा था। अगर राजू मुझे उस तरह देख लें—क्या कहेंगे राजू···?

"देखो, मैं तुम्हें ऐसे ही यहां नहीं लाया था।" राजू ने पास ही पड़े कपड़ों से अपने नंगेपन को छुपाने की कोशिश करते हुए कहा था। फिर कपड़े फेंककर वह उठकर खड़े हो गए थे— "सुबह नीचे मिट्टी ढोने वाले ट्रकों को मेरी लाश मिलेगी। बिल्कुल ऐसी ही नंगी लाश !···क्या तुम मेरी इतनी सी गलती भी माफ़ नही कर सकती ?"

मेरे कहे दो शब्द, जलती आग की रोशनी, पत्थर की दीवारें, मैं और···

पन्द्रह

"तुम्हें मालूम तो है," राजू हंसने लगे थे ! —"बस यह उसी रात का लफड़ा है। नहीं, यह बात नहीं यार, आजकल तो किसी चीज का भरोसा कहां है। ईविन कांट्रासेप्टिक्स"—एकदम वह बीच की जगह भरते हुए मेरे पास आ गए थे—"यार, मगर दिमाग ही तो है—जाने मुझे भी क्या हुआ था !"

मुझे मालूम था राजू किस अनकही बात को सोच-सोचकर शर्मिन्दा हो रहे थे।

"भला सोचो, वह भी कोई जगह थी जाने की ? जंगल बियाबान, न चिड़िया चोंके न कुत्ता भौंके ! और फिर गर्मी या जाड़े के मौसम में, चलो मान लिया जाया जा सकता है, मगर बरसात में सांप, बिच्छू, कोई ठिकाना है ! और वहां चीख-चीख के मर जाओ, कोई सुनने वाला भी नहीं।" राजू अपने ही ऊपर हंस रहे थे—"कोई सुने तो कहे पागल है ! क्यों ना ?"

अगले दिन से हॉस्पिटल की भागा-दौड़ी शुरू हो गई थी।

पहले एक इंजेक्शन—फिर हफ्ते-भर का इन्तजार ! राजू दिन में तीन-तीन बार नारायण की दूकान से घर फोन करते—'क्यों, कुछ हुआ ?" राजू बेतरह बेचैन रहते—'नहीं, ऐसा नहीं—कुछ होगा जरूर" वह मुझे समझाते।—"अभी तीन दिन ही तो हुए हैं ! क्या दवाएं हैं ! हफ्ता-भर, इन्तजार करो—डाक्टर ने तो इत्मिनान से कह दिया। अब अगर हफ्ते-भर में भी कुछ नहीं हुआ तो ?—साफ-साफ फरमा देंगी—अब आप केलशियम खाइये, ये टॉनिक, वह कैपसूल, और नौ महीने बाद हमें ख़िदमत का मौक़ा दीजिए।" उन्होंने डाक्टरों को गाली दी थी। —"फ़ेमिली-प्लानिंग, हुंह ! सड़कों पर, दफ्तरों में—सालों को जहां मिली—परिवार नियोजन ! जब जाओ तो अव्वल तो डाक्टर

"ये बुढ़िया कुछ करती भी है ?" तब राजू ने कहा था—"मैं ये चाहता हूं कि ज़मीन आंधी हो जाये, आसमान चक्कर खा जाये, लेकिन आप अपनी जगह से हिलें तक नहीं। आपको अखबार ही पढ़ना था, आप किसी को भी—इस बुढ़िया को भेजकर मंगवा सकती थीं। ये जो इतने हराम की खा रहे हैं, आखिर किस दिन के लिए ? इस बुढ़िया को नौकर किस लिए रखा गया है ? सिर्फ इसलिए कि आप खुद हिलकर पानी भी नहीं पियें। क्या पता कौन-सा कदम गलत पड़ जाये।" तब जब अंशु होने वाला था। राजू ने दवाओं के, टॉनिक्स के ढेर लगा दिये थे। उनके स्कूल के ज़माने का एक दोस्त भी अब डाक्टर था। हर दूसरे दिन वह राजू के साथ आता। हर हफ्ते हम मिसेज मजुमदार के क्लिनिक जाते—चेक-अप के लिए। भीम तो फीस नहीं ही लेता था ! मिसेज़ मजुमदार भी नहीं लेती थी।

"किस मुंह से लेंगी ?" राजू बताते—"ये जो उनके घर में मोज़ेक का फर्श हो रहा है, बाथरूम में दुनिया-भर की फिटिंग्स हो रही हैं, क्या वह खुद करा रही हैं ? हर एक का मांगने का अपना ढंग होता है।"

"अभी तो पहला है !" राजू मेरा सर दाबते हुए कहते !—"मेरा तो दिल चाहता है साला पूरा घर बच्चों ही बच्चो से भरा हो। स्वस्थ, साफ-सुथरे बच्चे, नहायें-धोयें। ये नही कि नाक सुड-सुड, और हाथ लगाने पर राजगिरे का लड्डू—फूट पड़े।"

और कभी राजू ने कहा था—"क्यों तुम्हें अजीब नहीं लगता कि बच्चे कभी तो बिल्कुल मां जैसे लगते हैं कभी बाप जैसे ? मेरा मतलब है एक ही बच्चा किसी ऐंगिल से बिल्कुल बाप की ट्रू कापी लगता है, किसी से मां की।"

फिर एक बार और—"खुद को जानना या समझना भी कितना मुश्किल काम है। हर बार खुद को अपनी ही हरकतों पर हैरत होती है कि अच्छा, यह हम थे। तो हम ऐसा भी कर सकते हैं। शायद अपने बस का सबसे अच्छा तरीका यह है कि बच्चे हों। बहुत सारे बच्चे। बह[illegible] लड़के, बहुत सारी लड़कियां। शायद हर बच्चा हमारी अपनी पर्स[illegible] दबे-ढके हिस्से होते हैं, उनका फुल-फॉर्म होता है। हर बच्चे [illegible]

अपना बांध तोड़कर मुझे अपने घेरे में ले लिया था।

"यार," वह हर रात मुझसे लिपटकर कहते—"जो कुछ भी है, मगर ये सेफ पीरियड है। कहां के साले रबर, और कहां के क्रीम। फिर औरत की भी क्या ज़रूरत है? असल में अच्छा तो ऐसे ही···"

"तुम्हारी जिम्मेदारी तो सिर्फ अच्छे और बुरे लगने तक ही है ना?" मेरी आवाज़ एक दिन तेज़ हो गयी थी—"इसके बाद? हां ज़रूरत भी क्या है? ग़ल्ती तुम्हारी नहीं, मुझे मालूम है तुम्हारी दलील क्या होगी। तुम समझ ही नहीं सकते, औरत की तकलीफ़ क्या होती है? अंशु से पहले—तब तक मुझे भी ऐसा ही लगता था कि सब कुछ सिर्फ थोड़ी-सी शारीरिक थकन और बहुत से दिमाग़ी आराम के साथ ही खत्म हो जाता है। पता चला, हर जन्म के साथ कितनी पीड़ा है—तुम सोच भी नहीं सकते। मुझे मालूम है यह सारी दुनिया कितनी तकलीफ से बनी है। अच्छा क्यों नहीं लगेगा? तुम्हें तो सचमुच इसके आगे सोचने की जरूरत भी नहीं है।"

"तुम से तो कुछ कहना ही मुश्किल है," राजू ने अपने पर काबू रखने की कोशिश करते हुए कहा था—"अरे बाबा, यह सब मैं किसलिए कर रहा हूं? खाने-पीने का तो ठिकाना नहीं और छत्तीस डाक्टर। इसमें भी पैसा ही खर्च होता है या यूं ही? और तुम तो अपनी राय के आगे सबको नत्थू समझती हो। बात को जरा समझने की कोशिश करो। नारायण और सुधा, उसकी बीवी, दोनों का यही कहना है कि···अरे कुछ नहीं होगा। और सोचो, कितनी मुश्किलों से बच जायेंगे।"

"नारायण कौन होते हैं? और सुधा? क्या वह हमारे गाड्-फादर हैं?" मेरा लहजा और कड़वा हो गया था और मुझे राजू सुन्न होते नज़र आये थे।

"किसीकी की हुई भलाई का बदला देने का यह अच्छा तरीका है।"

"कौन-सी भलाई? क्या कर दिया है उन्होंने हमारे साथ?"

"ये जो इतने डाक्टर, ये सब दवाएं? तुम समझती हो ये सब अपने आप···"

"कौन चाहता है डाक्टर, दवाएं? और उसके लिए क्या हमें उनका

गुलाम बनना पड़ेगा ? हर भली-बुरी बात मानना पड़ेगी ?"

"हां-हां," राजू एकदम उठकर खड़े हो गये थे—"अगर शर्मोहया वाली हो तो मानना पड़ेगा…" राजू की आवाज़ तेज़ होती जा रही थी—"पागल औरत" और उनके मुंह में न जाने कहां-कहां की गालियां आ गयी थीं—"मेरा क्या है, ऐसे ही फिर ! कर बच्चा पैदा ! नारायण के बारे में ऐसा कहती है, जो अभी तक कितने सौ हमारे चक्करों में ख़र्च कर चुका है। अरे, उसका एहसान तो तू उसकी रखैल बनकर भी सिर से नहीं उतार सकती। कमीनी ! निकल जाओ, चलो।" उन्होंने मुझे बाज़ू से पकड़ कर धक्का देते हुए कहा था—"इस घर से इसी वक्त निकल जाओ।"

राजू ने मुझे बाहर धकेल कर दरवाज़ा ज़ोर से बन्द कर लिया था और फिर उसी तेज़ी से दरवाजा खोलकर गालियां देते हुए वह ख़ुद बाहर निकल गये थे।

पता नहीं, शायद अब मैं आदी होने लगी थी। अपने बचे-खुचे रूप में मेरी आंखों में कुछ आंसुओं के सिवा कुछ नहीं था। अपमानित ? पता नहीं अपमानित महसूस करने पर मेरे अन्दर पहले क्या-क्या होता था ? बहुत पुरानी बात थी। बहुत पुरानी, याद…अब सब कुछ एक हद तक जाकर रुकने लगा है।

मैंने अपने चारों ओर देखा—मम्मी और दीदी की ओर का बन्द दरवाजा। कार का गैरेज, जिसमें अब बल्लियों का ढेर था—गैरेज के बाहर तक। कम्पाउंड का दरवाजा, जिसमें से निकलकर राजू अभी कहीं गये थे। और मेरे पीछे खुला हुआ घर का दरवाज़ा। घर जिसमें कहीं अंशुल था।

मैं उठी और घर के अन्दर दाखिल हो गयी।

त्रह

अगले दिन बिल्कुल सवेरे-सवेरे पप्पू आ गया था। साढ़े छः बजे सुबह
रसात, पानी की आवाज़ों में, कॉलबेल बजी और बजती ही चली गयी !
फर मुझे राजू की किसी से बातें करने की आवाज सुनायी दी। फिर राजू
ने मुझे आवाज़ देते हुए बुलाया।

"उठो यार, देखो पप्पू आया है।"

"हैलो," पप्पू ने कहा था—"अरे कहां, आप लोगों को सोते-सोते
जगाया ? क्यों भई ?"

मैं उठके बैठ गयी थी। पप्पू अंशुल को जगाने लगा और राजू कुछ
सुन्न से हो गये।

"घर पर सब ठीक-ठाक है ना ?" उन्होंने सिगरेट सुलगाते हुए
दुविधा में डूबे स्वर में पूछा था।

"हां, ठीक-ठाक ही है।" पप्पू ने जैसे प्रसंग को टालने के अंदाज़ में
कहा था—"वाह-वाह, देखो दीदी बच्चा हो तो ऐसा," उसने अंशुल को
गोद में उठाते हुए कहा था---"पहली ही नजर में मामा को पहचान गया।
आओ बेटा, देखो हम तुम्हारे लिए क्या लाये हैं ! और पप्पू ने अंशुल
को खिलौने निकाल कर दिये थे—"तुम्हारे लिए" पप्पू ने मुझे सम्बोधि
करते हुए कहा था—"यार, तुम्हारे अच्छे ठाट हैं ! तुम्हारे लिए मम्मी
एक अलग डब्बा दिया है, सील्ड। जाने कोई हलवा-वलवा है। इसलि
कि मैं रास्ते में ही नहीं खा जाऊं।" और पप्पू ज़ोर से हंसा था।

"अरे, यह सब तो बाद में होता रहेगा," राजू बोले थे—"यार,
नहाओ-धोओ तो। बरसात में रेल का सफ़र। जगह तो मिल गयी
ना ?"

"हां, जगह तो..." पप्पू ने अपनी ठोड़ी पर हाथ फेरते हुए कहा
"और हम रिजर्वेशन में तो बिलीव करते नहीं। आज तक कभी को

सफर नहीं किया जब रिजर्वेशन कराया हो।"

राजू पप्पू के बाथरूम जाने तक वहीं उसके आस-पास मंडराते रहे। फिर जैसे ही पप्पू अन्दर गया…

"सुनो," उन्होंने विनती के-से स्वर में कहा था। पिछली रात की घटना की सारी कड़ुवाहट एक पल में ही कहीं पीछे छोड़ने की चेष्टा करते हुए वह कह रहे थे—"देखो, तुम्हारे और मेरे बीच की बात…"

"वह भी तो मेरा भाई ही है!"

"अरे सुनो तो! देखो जो कुछ है, वह कहने-सुनने से कम तो होगा नहीं। और वह बेचारा दो-चार दिन को तो आया ही है, क्या फ़ायदा…"

"हर चीज़ फायदे-नुकसान से ही तो नहीं नापी जा सकती। फिर तुम्हारा तो सारा शहर है, दोस्त हैं, संबंधी हैं, मैं किसके कंधे पर सर रख के रोऊं?" जाने आंसू आप ही आप उबलकर मेरी आंखों तक कैसे आ गये थे?

"अरे सुनो तो यार," राजू एकदम घबरा गये थे—"मैं कुत्ता, मैं कमीना, मैं तुमसे माफी मांगता हूं, लो तुम्हारे पैर पकड़ लेता हूं" और झुककर, मेरे रोकने के बावजूद राजू ने मेरे पैर पकड़ लिए थे—"मगर सोचो तो, वह बेचारा कुछ दिन के लिए आया है—मेरी गल्ती है, आप मुझे मार डालिये, काट डालिये, टुकड़े-टुकड़े कर डालिये जो मैं उफ तक करूं, मगर वह गरीब…"

मेरी ओर से निश्चिन्त होते ही राजू तेज़ी में होटल तक गये चाय के लिए दूध लाकर दिया। और फिर कुछ और शकर, ग्रीन लेबिल चाय की पुड़िया—"अब हम तो चूरे की चाय में भी आनंद उठा लेते है।" उन्होंने खुसर-पुसर के अंदाज़ में कहा था—"मगर उसके," उन्होंने बाथरूम की ओर इशारा करते हुए कहा था—"उसके आनंद के लिए तो ग्रीन लेबिल की ही ज़रूरत पड़ेगी। सब ठीक हो जायेंगे साले अब सिर पर पड़ेगी।"

"क्या बिस्कुट का ही नाश्ता?"

"नहीं यार, कुछ सब्र तो करो…"

फिर जलेबियां लायी गयी थीं। बाजार से ही किसी चीज़ लाया गया था। परांठे बनाने को घर में घी नहीं था।

"अब इस समय तो किसी तरह टालो," राजू ने तंग आये स्वर में कहा था—"अब उसके सामने क्या बर्तन उठा के घी लेने जाऊं ?"

न चाहते हुए भी, मुझे लगा था कि पप्पू हमारी हालत समझ गया है। उसने कुछ भी बारीकी से नहीं पूछा था। अब दस-साढ़े दस बजे राजू घर से कुछ देर के लिए कहीं गये थे, शायद कहीं से कुछ पैसों का और घी जैसी ज़रूरी चीजों का इन्तजाम करने, तो पप्पू ने पहली बार मेरी ओर गौर से देखा था।

"यहां सब ठीक-ठाक है ना ?" उसने शक में डूबी हुई आवाज़ में पूछा था।

"क्यों ?"

"ऐसे ही " उसने टटोलने के अंदाज़ में कहा—"जीजाजी कुछ अन-ईज़ी लग रहे थे।" और फिर मेरे जवाब से पहले ही—"सुनो." उसने आवाज़ धीमी करते हुए कहा था—"वहां पूना में अच्छा लफड़ा हो गया।"

"क्या हुआ ?" मैं एकदम चौकन्नी हो गयी थी।

"वह जमीला," वह एक पल को रुका था—"वह घर से भाग गयी।"

"क्या मतलब ?"

"मतलब ? मतलब मुझे क्या मालूम।" पप्पू ने झल्लाये-से स्वर में कहा था—"लखनऊ से उसकी शादी थी। लड़का अमरीका से आ गया, कार्ड छप गये, शादी की सारी तैयारी हो गयी और शादी से दो दिन पहले वह घर से भाग गयी। पूना में पुलिस आई। उन लोगों को शायद मुझ पर शक है। साले दो दिन तक परेशान करते रहे।"

मैं कुछ देर के लिए हक्की-बक्की-सी रह गयी।

"फिर ?" कुछ क्षण बाद मैंने पूछा था।

"क्या पता।" पप्पू कहकर कुछ सोचने लगा था।

"उनको तो विश्वास था कि वह मेरे साथ भागी है, यहां मुझे खुद कुछ मालूम तक नहीं।"

"कितने दिन हो गये उसको भागे हुए ?"

"आल मोस्ट अ फोर्टनाईट !"

"लखनऊ जाने से पहले तुमसे मिली थी ?"

"मिली थी। यह भी कहा था कि वह शादी नहीं करेगी, करेगी तो सिर्फ मुझसे। मैंने उसे समझाया भी था—आई मीन यही कि···" पप्पू एक पल को रुक गया और मुझे! मुझे कभी उसकी बातों पर पूरा विश्वास ही नहीं आता था। "यू नो द वे शी टाक्ड एण्ड बिहेव्ड···मैं तुम्हारे लिए ये कर सकती हूं, यह कर दूंगी, जमीन, आसमान, क्या-क्या, जैसे बच्चे बातें करते हैं। मैं उससे कहता भी था कि तुम्हारी एप्रोच टुवर्ड्स लाइफ़ बहुत रोमांटिक है। तुम बिल्कुल इस तरह भावुक हो जाती हो, जैसे मैं पहली बार जब ··" पप्पू ने जान-बूझ कर मुझ से आंखें चुरायी थीं और चुप हो गया था।

पप्पू का 'पहली बार,' मैं अच्छी तरह जानती थी। पास-पड़ोस पूना में एक दयाल साहब रहते थे, उनकी एक साली हुआ करती थी, सुषमा—पप्पू की लगभग दुगनी उम्र, कानवेंट में पढ़ाती थी और बहुत फास्ट टाईप थी। पप्पू उस पर दीवाना हो गया था। बस-स्टैण्ड पर जब वह स्कूल-बस का इन्तजार करती वह उसे देखता रहता, घर की छत पर खड़े होकर। फिर जाने कैसे वह उनके घर भी जाने-आने लगा था। रातों को देर-देर तक उनके यहां ठहर भी जाता और किसी के समझाने का उस पर कोई असर न होता। फिर सुषमा जी ने किसी से शादी कर ली और पप्पू जी केवल टापते रह गये थे। वह महीनों उसे याद करके रोया था। खाना-पीना छोड़ दिया, लोगों से मिलना-जुलना खत्म कर दिया—और तभी से लिखने-पढ़ने से उसका मन उचट गया था। उस समय पप्पू की उम्र मुश्किल से चौदह-पंद्रह वर्ष रही होगी। फिर इसके बाद तो पप्पू की प्रेमिकाओं की एक बड़ी-सी सीरिज बनती थी।

"और मालूम है, टिल द वेरी एण्ड, मैं यही सोचता रहा. मैंने उससे कहा भी कि तुम्हारी शादी हो जायेगी, बाहर चली जाओगी और थोड़े दिन बाद हम लोगों का ये रिश्ता जो अभी इतना रियल लग रहा है, इर का खयाल लगने लगेगा। मैंने कभी भी उसे सीरियसली तो लिया ही नहीं।"

"सीरियसली नहीं लिया तो फिर सारे समय उसके साथ क्यों … करते थे?" न चाहते हुए भी मेरे स्वर में झल्लाहट आ गयी थी।

"अरे यार!" पप्पू मुझे ताकता-सा रह गया था।

बिल्कुल चुप हो गया था—"तुम तो ··" उसने कुछ ठहर कर फिर से कहना शुरू किया था—"तुम तो जमीला के मां-बाप और पुलिस से भी बढ़ गयीं। मैं यह कब कह रहा हूं कि वह मुझे अच्छी नहीं लगती ? आई रियली लाइक्ड हर—पर हमेशा दिमाग में यही रहा है कि यह रिलेशन कभी न कभी टूटते हैं। भाई लफड़े भी तो देखो—वह मुस्लिम है, मैं हिन्दू हूं। उसके पास सारी दुनिया की क्वालिफिकेशंस हैं—पता नहीं, क्या-क्या कर रखा है उसने, हमने अभी तक हाई-स्कूल भी पास नहीं किया है और उसकी शादी ! लड़का चार्टर्ड एकाउन्टेंट है वहां कैनेडा में। और सारी फेमिली —दे आर सो वेल प्लेसड।"

"तो फिर ठीक है," मैंने अंशु का निकर बदलते हुए कहा—"तुम्हें घबराने की क्या बात है ? हो सकता है वह यूं ही कहीं चली गयी हो। या—या फिर किसी और के साथ भाग गयी हो। जब तुमने उसे कभी सीरियसली लिया ही नहीं तो अब घबराने की क्या जरूरत है ?"

पप्पू के चेहरे पर चोट खा जाने का-सा भाव तैर गया। थोड़ी देर तक खामोशी रही थी।

"तुम्हारे यहां आज का पेपर नहीं आया ?" थोड़ी देर बाद पप्पू ने खामोशी को तोड़ा था।

"हां, शायद···" मैं एकदम अंदर ही अंदर कमजोर पड़ने लगी थी। अब तो महीने, कितने महीने हो गये थे घर का अखबार बंद हुए। बस, कभी-कभी राजू नारायण की दूकान से पेपर लेकर आ जाते थे। न समाचार-पत्र, न दूसरे रिसाले, पत्रिकाएं।—"शायद बरसात की वजह से नहीं आ पाया होगा। पानी भी तो देखो कितना मूसलाधार बरस रहा है, घर से पांव बाहर निकालना दूभर हो जाये।"

"ये जीजा जी भरी बरसात में कहां चले गये ? क्या इन दिनों भी कोई काम चल रहा है ?"

"नहीं, काम तो नहीं, उन्हें किसी से मिलना था। आते ही होंगे।" मुझे अंशुल परेशान किये जा रहा था। आजकल उसको नया शौक चढ़ गया था। जैसे ही कोई किताब या कागज का पन्ना हाथ लगता वह मुझ से कहता कि पढ़ कर सुनाओ। पेंसिल हाथ लग जाए तो दीवारों पर,

किताबों पर जहां-जहां उसकी पहुंच होती, टेढ़े-मेढ़े अक्षर बनाता रहता। पप्पू उसे मुझ से लेकर बैठ गया था और समझा रहा था—"ए, बी, सी।"

राजू स्कूटर पर लौटे थे। उस समय पानी थोड़ी देर को रुका था।

"लो, हम तुम्हें इसलिए घर छोड़ कर गये थे?" उन्होंने अंशुल को पप्पू के पेट पर उचकते देखकर कहा था—"अरे यार, थोड़ा आराम कर लेते।"

"आपकी कार को क्या हो गया जो इतने पानी में स्कूटर पर?" पप्पू ने पूछा था। रसोई में कुछ काम करते हुए मैं एक पल को सुन्न रह गयी थी।

"अरे यार, उसी चक्कर में तो मारे-मारे फिर रहे हैं। एक महीना हो गया, मेकेनिक के यहां पड़ी है। रोज आज-कल करता रहता है।"

थोड़ी देर बाद एक आदमी रसोई का सामान और दूसरी जरूरत की छोटी-छोटी चीज़ें दे गया था। शायद राजू किसी दूकान पर पैसे देकर आ रहे हैं, मैंने आप ही आप सोचा था।

दोपहर को खाने के बाद जब पप्पू थोड़ी देर के लिए सोने लेट गया तो—

"सब सामान ठीक है?" राजू ने दबी-दबी आवाज़ में मुझसे पूछा था।

"कहां से लाए?"

"अब उसे छोड़ो," राजू ने बात टालते हुए कहा—"बस धीरे-धीरे जीवन बीतने के साथ-साथ मुहावरों के मतलब समझ में आ रहे हैं। आज पता चला गरीबी में आटा कैसे गीला होता है! आटा तो आटा, कपड़े तक गीले हो गए। कैसे आया है?" अपनी आवाज उन्होंने और धीमी करते हुए पूछा था।

"कैसे आयेगा? हम लोगों से मिलने आया होगा।"

"अच्छा-अच्छा।" राजू ने इस अंदाज से कहा था जैसे उन्हें मेरी बात में सन्देह हो।

पानी मुसल्सल गिरता रहा।

शाम की चाय पर राजू और पप्पू की बात हुई थी—जमीला को

लेकर।

"वहां मम्मी और बाबा परेशान हो गए और उन्होंने कहा कि मैं कुछ दिनों के लिए पूना छोड़कर चला जाऊं।"

राजू इस प्रसग के निकलते ही जीवंत से हो गये थे।

"नहीं, नही तुमने बहुत अच्छा किया जो यहां चले आये। हो सकता है जमीला भी—उसे हम लोगों का पता मालूम है ना ?"

"मालूम क्यों नहीं है ? मैंने खुद यही सोचा कि हो सकता है वह यहां···"

पप्पू और राजू बातें कर रहे थे और मुझे न मालूम कैसी बेचैनी घेरे ले रही थी। राजू पप्पू से कह रहे थे—'अगर जमीला यहां पहुंच गयी तो बस फिर कोई खतरा नहीं। सब ठीक हो जायेगा। यहां घर पर या किसी भी दोस्त के यहां उसे ठहराया जा सकता है और फिर···"

"तुम उससे शादी करना चाहते हो ना ?" राजू ने पप्पू से पूछा था और पप्पू काफी देर तक चुप रहा था। उसने कोई जवाब नही दिया था।

"अगर शादी करना चाहते हो, तब तो इस छत्ते में हाथ दिया जाए, नहीं तो क्या फायदा ?" राजू ने फिर कहा, और पप्पू फिर कुछ नहीं बोला, सोचता रह गया।

अठारह

रात को जब पप्पू और अंशुल सो गये तो राजू ने मुझे किचिन में बुलाया था।

"क्या कुछ दूध बचा होगा ?" उन्होंने पूछा। मेरे न कहने पर, रात के साढ़े नौ बजे, बरसाते पानी में वह दूध का बर्तन लेकर चौराहे के होटल तक गये थे और दूध लेकर आये थे।

"इस समय दूध पीने को ऐसा कौन-सा दिल चाह रहा है ? और इतना बहुत सा ?"

"अरे नहीं यार," राजू ने सिगरेट के कश खींचते हुए कहा था—"पीना नहीं है, ऐसा करो, तुम जाओ सोओ, मुझे थोड़ी देर लगेगी।"

मैं बिस्तर पर लेटी सोचती रही थी—पप्पू और जमीला मेरे दिमाग से कहीं दूर चले गये थे। रह-रह कर घर का मौजूदा नकशा मेरी आंखों में घूम रहा था। नौकरों का न होना, कार, रेफ्रीजरेटर, गैस-बर्नर, रेडियोग्राम के रिक्त स्थान, राजू की मम्मी की अनुपस्थिति, और इन सबसे बढ़ कर राजू का इस तरह ऐक्ट करना जैसे सब वैसा ही है, कुछ नहीं बदला ! क्या यह केवल मुझे ही लग रहा था कि राजू ऐक्ट करने के प्रयास में ओवर-एक्ट कर रहे हैं ? क्या पप्पू सब कुछ समझ नहीं गया होगा ? क्या इस तरह हम उसे धोखा देने में कामयाब हो जायेंगे ? और फिर, मैं क्यों ? मेरा तो वह सगा भाई है। शादी से पहले हम एक दूसरे के बारे में सब कुछ जानते थे। पप्पू अपनी उम्र से ज्यादा समझदार था और कई अवसरों पर उसने मुझे कितने ठीक मशवरे दिये थे, मेरी मदद की थी। वह अगर बुरा था तो केवल खुद के लिए, वह भी इस कारण कि वह कुछ करता नहीं था। मैंने कितनी बार उससे कहा था—"पप्पू, तुम्हें देखकर मालूम है कैसा लगता है ? जैसे एक नेस्ती आदमी, भरी दोपहर से डर कर घने छायादार वृक्ष के नीचे पड़ा सो रहा हो। बस इसी तरह तुम अपना [illegible] बिता रहे हो।" इस पर पप्पू का मुंह बन गया था और उसने बहुत [illegible] उखड़े हुए अंदाज़ में कहा था—"यह तो समय आने पर पता [illegible] तब तुमसे पूछेंगे कि मुझे देखकर कैसा लगता है।" फिर [illegible] से सब कुछ छिपाने में राजू की भागीदार क्यों बन रही हूं ? [illegible] हमारी आज की हालत सिर्फ चन्द दिनों के लिए है ? [illegible] में, थोड़े ही दिनों में सब कुछ ठीक हो जायेगा ?

"ये जो इतने [illegible] लदे फिरते हैं, [illegible] सब हम से [illegible] सकते हैं. [illegible]

के वाद, सिनेमा के कम्पाउंड में खड़े-खड़े पूछा था । हम लोग टैक्सी का इन्तजार कर रहे थे और कम्पाउंड में कारें ही कारें थीं । हार्न वज रहे थे, लोग इधर से उधर हुए जा रहे थे तभी पास सड़क पर से गुजरती एक कार में से किसी ने राजू को हाथ हिलाया था और गुजर गया था । चन्द क्षणों वाद ही राजू फट पड़े थे ।—"अगर ये सचमुच समझदार होते ना, तो आज या तो किसी स्कूल कालिज में पढ़ा रहे होते या फिर लेखक होते—दाने-दाने को मोहताज । वस, एक अजीव चक्कर है जो मुश्किल से समझ में आता है । कालिज में साले टाप करने वाले रोटी नहीं कमा पाते । एक तरह का सट्टा है, जिसके हाथ लग गया, वही ठेकेदार वन गया, मालदार वन गया । वस, आदमी इनर्जेटिक हो, हाथ पैर मारते थके नहीं, पैसा कदमों में ढेर हो जायेगा । और अगर जरा भी सैन्टिमेंटल हुआ तो खुद भी धूल में मिल जायेगा । क्यों, मैं गलत तो नहीं कह रहा ना ?" और सहसा राजू हंस पड़े थे—"क्या वतायें यार," जैसे उन्होंने अपने आपसे कहा था और उनकी नजरें फिर टैक्सी की तलाश में दौड़ने लगी थीं ।

"क्या सो गयीं ?" राजू किचिन से अन्दर आ गये—"क्या यार !" वह मेरे पास वैठ कर सिगरेट के कश खींचते रहे थे—"देख लिया तुमने ? तुम्हें तो लाख-लाख शुक्र अदा करना चाहिए जो हम जैसा आदमी मिला । ज़्यादा से ज़्यादा यही कि वोलता वहुत है, लेकिन रहता तो अपने ठिकाने पर ही है । वहां सोचो लखनऊ में क्या विना मुहर्रम का मातम हो रहा होगा । यार, देखने में तो वह लड़की इतनी मजवूत नहीं लगती थी । और तुम्हारे भइया ! मैं तो नहीं सोच सकता था । विचारी को मरना भी था तो इन जैसे ढीले के लिए," कहते हुए राजू फिर किचिन की ओर चले गए थे । जाने किस समय मेरी नींद लग गयी थी ।

"उठो," राजू की आवाज़ से मैं जागी थी— 'सुनो, ऐसा करो, जल्दी से इसे पी लो ।"

राजू के हाथ में चीनी का वड़ा कटोरा था जिसमें वह कुछ लिए खड़े थे ।

"ये क्या है ?" मैं कुछ समझ नहीं पायी थी ।

"अरे पी लो यार । हम इतनी मेहनत कर के वना कर ला रहे हैं ।"

"लेकिन है क्या ?" मैंने प्याले को थामते हुए पूछा था। प्याला अभी तक गुनगुना था और शायद राजू ने उसे पानी में रखकर ठण्डा किया था।

"दवा है," राजू ने मेरे पास बैठते हुए कहा था—"जहां इतनी ट्राई की वहां यह एक आखिरी और सही। अगर इससे भी कुछ नहीं हुआ तो फिर मैं प्रामिज करता हूं, अब हम कुछ नहीं करेंगे। यही समझ लेंगे कि हरामजादी किस्मत में ही एक और जाइज बच्चे का बाप बनना लिखा है। पी लो यार।"

मैं प्याला नाक तक लाई थी—औंट-औंट कर गाढ़ा हो गया दूध जिसमें से नथुनों को फाड़ देने वाली सी झलगंध आ रही थी।

"और अगर कुछ उलटा-सीधा हो गया तो ? इसमें है क्या ? किसने दवा बतायी है ?"

"उलटा-सीधा कुछ नहीं होगा, तुम यकीन रखो। मेरे ख्याल से तो होगा इससे भी कुछ नहीं, तुम सुबह हंसती-खेलती उठोगी। बस यह समझ लो, दिल को बहलाने का आखिरी बहाना है। रहमत मियां—वही जो अपने यहां आया करते हैं, शतरंज वाले, उन्होंने बताया है। कुछ नहीं यार," राजू ने प्याला मेरे हाथ से लेकर अपनी नाक तक ले जाते हुए कहा था। सूंघते ही उनको फुरेरी आ गयी थी, फिर भी खुद पर कंट्रोल करते हुए उन्होंने कहा था—"कुछ नहीं, बस लहसन की कलियां दूध में उबाली हैं। लहसन की बू है, बिल्कुल जैसे किसी वैद्यराज का काढ़ा। पी डालो यार।"

शायद सचमुच ही कुछ न हो। मैंने प्याला राजू के हाथ से लिया था, नाक बन्द की थी और सब कुछ हलक में उलट लिया था। न उबकाई, न तकलीफ। सब कुछ, अगर हम चाहें तो बहुत आसानी से बरदाश्त किया जा सकता है। अभी चन्द क्षण पहले जो चीज मुझसे सूंघी नहीं जा रही थी, उसी को मैंने पी डाला और सब कुछ वैसा का वैसा था। बस कहीं, नीचे, पेट की तह के आस-पास किसी हल्की-हल्की जलन का आभास होता था। सो वह भी हो सकता है मुझे पहले से ही ऐसिडिटी रही हो, उसी की जलन हो।

राजू किचिन में प्याला रखकर, लाइट्स ऑफ करते हुए वापिस कमरे में आए और मेरी ओर निराशा में डूबी हुई नजरों से देखा।

"जब सवारी ही हम जैसी हो तो इक्का वाला क्या करेगा?" राजू ने बिस्तर पर बैठते हुए कहा था—"बस ये है कि अपने बूते में जो कुछ है, वह कर रहे हैं। होना होगा तो हो जाएगा, नहीं तो अपना क्या बिगाड़ लेगा। जब सितारे में ही दुम निकल आये तो···तुम ठीक हो ना?" वह मेरी ओर मुड़े थे—"सब ठीक है?" उनके कहने के भाव में इत्मिनान के बजाय शिकायत थी और शिकायत में दम तोड़ता-सा उम्मीद का भाव। उन्होंने एक गहरी सांस ली थी—"वैसे शायद कुछ टाइम तो लगेगा ही" उन्होंने कहा था।

राजू सिगरेट जलाकर लेट गये थे।

"सुबह पप्पू को···" वह कह रहे थे।

"देखो अगर जरूरत पड़े तो···" थोड़ी देर बाद राजू ने नींद में डूबी आवाज़ में कहा था—"वैसे मैं सो नहीं रहा हूं, लेकिन ज़रूरत पड़े तो मुझे आवाज़ दे लेना। सुनो" उन्होंने मेरी ओर मुड़ कर कहा था—"तुम भी सोने की कोशिश क्यों नहीं करती? जो होगा, देखा जायेगा।"

राजू सो गए थे। दूसरे कमरे में पप्पू था और अंशुल।—दोनों शायद इस समय गहरी नींद में हों। केवल मैं जाग रही थी—तो यह भी कोई नई बात नहीं थी। कभी-कभी रात का बड़ा हिस्सा इसी प्रकार मैं दो दिनों को आपस में जोड़ने की कोशिश में बिता देती हूं। सोचने पर लगता है दो लगातार बीते दिन भी आपस में कितने भिन्न होते हैं। एक ही रात में सारा 'टोन' बदल जाता है। एक दिन को एक खास समय पर किसी विशेष मूड में अलविदा कहने के बाद हम सो जाते हैं और अगला दिन किसी दूसरे ही ढंग से हमारा स्वागत करता है। कभी-कभी तो यह अन्तर इतना अधिक होता है, कि हम दिन-भर एक अजीब प्रकार के मूड में बंधे रहते हैं, हर चीज़ बुरी लगती है, हर एक से झगड़ने को दिल चाहता है। मैं कभी-कभी इसी तरह रात को देर तक जागते हुए, आने वाली सुबह और दिन के लिए अपने आपको तैयार-सा करती हूं—वह पुल खोजती हूं, जिसके सहारे आज कल से जुड़ पाए और दिनों में कुछ ताल-मेल रह सके। लेकिन फिर भी लगता है जीवन कुल मिलाकर ऐसे दिनों का ही एक सिलसिला है जो आपस में बेजोड़ और बिल्कुल अलग-अलग

है। क्या सब के साथ ऐसा ही होता होगा ? और मैंने जो बहुत पहले कभी सोचा था कि जीवन किसी म्यूज़िक कम्पोज़िशन की तरह है, जिसमें हर आवाज़ उसे उस क्लाइमैक्स की ओर ले जाती है, जहां पहुंच कर वह कम्प्लीट हो जाता है ? स्टेप बाई स्टेप—धीरे-धीरे। मैंने करवट बदली थी, और फिर जाने कब मेरी नींद लग गयी थी।

उन्नीस

आंख खुलने के थोड़ी देर बाद तक मैं वैसे ही सोती-सी पड़ी रही थी। फिर लगा था सोने और इस जागने के बीच भी मैं अधसोयी स्थिति में रही थी और रह-रह बेगिनती बार करवटें बदली थीं। जाने क्यों ऐसी बेचैनी मुझ पर सवार थी ? फिर थोड़ी ही देर में दर्द शुरू हो गया था।

दूर कहीं पुलिस चौकी में घण्टे बजे थे। अभी थोड़ी देर में सुबह हो जाएगी। अंशुल और पप्पू···राजू आज भी पता नहीं दुकान जाएंगे या नहीं ? स्कूटर—नारायण का जाने उन्होंने वापस किया या नहीं ? पप्पू—क्या वह यहां तब तक रुकेगा जब तक जमीला नहीं आ जाती ? और आ चुकी जमीला ! अगर कुछ दिन पप्पू इसी तरह ठहरा रहा तो गाड़ी किस तरह चल पायेगी ? यह नाटक कब तक खेला जा सकता है ?

मेरे न सोचने के बावजूद दर्द धीरे-धीरे बढ़ता जा रहा था। अगर यह यूं ही बढ़ता गया तो, मुझे लगा थोड़ी ही देर में मेरी सहन-शक्ति के बाहर हो जाएगा ! पहले लगा जैसे कहीं मेरे भीतर कोई दुबकी-सी गर्मी है, और फिर एक-एक क्षण के साथ यह गर्मी एक तपती हुई नदी में परिवर्तित होती गयी। जाने कितनी देर तक मैं बिस्तर पर करवटें बदल-बदल कर बरदाश्त करने की कोशिश करती रही थी !

"राजू···" अन्त में मैंने मजबूर होकर राजू को

धीमी, बाद में जरा ऊंची आवाज़ में पुकारते हुए मैंने राजू को हिलाया था।

राजू नींद में डूबे-से उठकर बैठ गए थे—"क्या हुआ ?" उन्होंने नींद से भरी आवाज़ में पूछा था—"क्या है ?" आवाज़ में वह झल्लाहट भी शामिल थी, जो आमतौर पर राजू को सोते से बेवक्त जगाने पर उनके स्वर में आ जाती है।

मुश्किल से मैं बिस्तर पर उठकर बैठ पायी थी—"अगर ज़्यादा दर्द न हो रहा हो तो लेटी रहो," राजू ने आलस में डूबी-सी आवाज़ में कहा था—"क्या बजा होगा !···बस तो अभी थोड़ी देर में सुबह होती है। घबराओ मत यार, लेट जाओ।"

कुछ क्षण बाद राजू ने उठकर सिगरेट जलाई थी—"क्या बहुत ज़्यादा हो रहा है ?" पहली बार उनकी आवाज़ में परेशानी झलकी थी। "कहां जा रही हो ?" मुझे बिस्तर पर बैठते देखकर उन्होंने पूछा था।

"बाथरूम···" बड़ी मुश्किल से मैं कह पायी थी।

राजू ने लपक कर मुझे सहारा दिया था—"देखो, घबराने को कोई बात नहीं," उनकी आवाज़ में पिछली रात वाली निराशा इस समय नहीं थी, बल्कि मुझे लगा था राजू खुश होकर कह रहे हैं। उनकी आवाज़ खुशी में डूबी हुई थी। उस तकलीफ के बावजूद, उस पल भी वह खुशी का अंदाज़ मेरे कहीं बहुत अन्दर जाकर चुभा था। फिर दर्द की दूसरी लहर बहा कर मुझे आगे ले गयी थी।—"अब देखो, थोड़ी-बहुत तकलीफ तो होगी ही। खुद पर थोड़ा काबू रखो," राजू ने बात पूरी की थी।

इतनी ही देर में मेरे कपड़े पसीने में नम हो चुके थे। राजू मुझे थामे हुए बाथरूम तक ले गये और फिर वह वहीं बाहर ही दरवाज़े के पास ठिठक के रुके थे—"मैं यहीं खड़ा हूं," उन्होंने मुझसे नज़र चुराते हुए कहा था—"तुम आवाज़ दे लेना," मुझे वहीं छोड़कर वह पास की दीवार पर टंगे केलेण्डर के पन्ने पलटने लगे।

अन्दर बाथरूम में सारे समय मेरी आंखें वहां जड़ी रहीं थीं जहां पहले बोल्ट लगा हुआ था, जिसे एक दिन राजू ने स्वयं अपने हाथों से उखाड़ा था।—"हमें तो तुम हर हाल में अच्छी लगती हो,' क दिन राजू

ने कहा था। तब जब नहाने से पहले मैंने सिर में बहुत सारा तेल उंडेल रखा था। गर्मियों की दोपहर थी और बहुत देर तक मैंने घर की दीवारें, छतें और कोने-कोचर झटके और साफ किए थे। राजू जाने कैसे एकदम घर पहुंच गये थे। उस हाल में मुझे देखकर वह कुछ चुप-से हुए थे और उनकी आंखों की वह चमक ! इस चमक को मैं तब तक खूब समझने लगी थी।

"नहीं राजू," मैंने यूं ही ऊपरी दिल से राजू को अपने पास आने से रोकते हुए कहा था—"क्या हुलिया हो रहा है, भंगनों जैसा। अच्छा नहीं लगता।"

"आप वैसे क्या भंगन से बेहतर हैं ?" राजू ने व्यंग करते हुए कहा था—"ज्यादा से ज्यादा भंगन नहीं तो आप मेहतरानी हो सकती हैं। और यार···" जैसे राजू को याद आया था—"हमारे एक क्लासफैलो हुआ करते थे, अब तो कैनेडा चला गया, उनका मालूम है क्या था···? एक भंगन उनके घर के सामने की सड़क पर रोज़ सवेरे झाड़ू दिया करती थी ? पता चला वह उस पर मर मिटे। जब तक वह झाड़ू देती, वह घर के सामने वाले बस स्टैण्ड पर खड़े उसे ताकते रहते। रोज़ सुबह का यह नियम था—चाहे दूसरे काम सब चूक जायें मगर सुबह बस स्टैण्ड पर बैठना नहीं टल सकता था।—'पाक मुहब्बत' लोग मजाक उड़ाने के लिए कहते और एक शेर उन पर फिट कर दिया था—मेहतरानी से दिल लगाते हैं, वह कमाती है आप खाते हैं।"

फिर वही सब-कुछ हुआ था —"तुम तो अगर सचमुच कहीं मुझे सड़कों पर झाड़ू देती भी दिख जाती तो आज यही होतीं। और सुनो," राजू ने पल-भर को रुकते हुए कहा था—"आज यार, हम तुम्हें नहला-येंगे..."

बीस

"कुछ हुआ ?" मेरे बाहर निकलते ही राजू ने मुझे सहारा देते हुए पूछा था। मेरे 'नहीं' कहने पर भी उनके उत्साह में कोई विशेष अन्तर नहीं आया था—"तकलीफ ज़्यादा तो नहीं रही ना ?" उन्होंने मेरे साथ चलते हुए पूछा था।

समय बीतता रहा था और राजू सिगरेट पीते इन्तजार करते रहे थे।—"फ़िक्र मत करो, बस थोड़ी देर की बात है, सब ठीक हो जायेगा।" वह रह-रह कर मुझे समझाते रहे थे।

एक बार फिर मुझे बाथरूम तक जाना पड़ा। राजू फिर बाहर ही रुक गये थे। खून—जो चीज अन्दर जाकर मेरी नज़रों में ठहर गयी थी वह था खून। मुझे चक्कर आ गया था, फिर भी हिम्मत करके मैंने खुद पर काबू पाया था। और किसी बड़ी दुर्घटना का इन्तज़ार करने लगी थी।—दर्द—लगता था जैसे मेरा भीतर किसी ने अरई डालकर बिलो दिया हो। वह दर्द, जब अंशुल का जन्म हुआ था, वह अलग था। तब मैं चीखें मार कर रोई थी। पैर चलाये थे, इस दर्द में एक अलग-सी घुटन थी। खामोशी और घुटन। मैं चाहती थी किसी तरह फट पड़ूं। सारा दर्द और पीड़ा जो कुछ अन्दर था सब बह कर निकल जाए।

घटना-क्रम इसी प्रकार चलता रहा था। मसहरी से बाथरूम तक मैंने जाने कितने चक्कर लगाये थे। जाने कब अंधेरा छटा था। कब पप्पू और अंशु जागे थे। कब राजू किसी दायी को लेकर आए थे। फिर मुझे अस्पताल ले जाया गया था। जाने क्या-क्या हुआ था, कितनी देर तक होता रहा था, न जाने कितनी देर तक मैं होश और बेहोशी के बीच झूलती रही थी। कौन-कौन-सी आवाजें कहां-कहां से आती रही थीं, कौन-सी अजीब बू मेरे सारे अस्तित्व में फैल गयी थी। मैं रह-रह कर सोती और जागती और चीज़ें कभी मेरे पास आतीं कभी दूर चली जातीं। कोई तकलीफ नहीं थी,

कोई एहसास ही नहीं रह गया था।

"बड़ी मुश्किल से मानी।" जैसे ही मैं कुछ सुनने-बोलने के काबिल हुई, राजू ने मेरे कान में फुसफुसाते से स्वर में कहा था—"वह तो पुलिस को फोन करने वाली थी"—राजू ने डाक्टर की ओर संकेत करते हुए कहा था—"ऐसी बिगड़ी है, ऐसी बिगड़ी है कि मैं कांप-कांप गया। कहने लगी कि 'दिस इज प्लेन अटेम्पट टू मर्डर मिस्टर—आई विल सी टू इट दैट यू गो बिहाइंड द बार्स' मैंने हाथ जोड़े, समझाया कि सब-कुछ गलती से हुआ है, तुमने गलती से गलत दवा अंधेरे में पी ली, मगर वह तो वो लाल-पीली हुई है, वो लाल-पीली हुई है कि बस! दूसरे लोगों ने समझाया पता नहीं किस-किस की खुशामद की और मैंने तो कह दिया कि अगर इसे कुछ हो गया तो मैं खुदकशी कर लूंगा।"

राजू की आवाज उस समय मुझे कहीं दूर से आती लग रही थी। कमरे में बिजली की रोशनी थी और मेरे ग्लूकोज की बोतल लगी हुई थी।

"क्या समय होगा?" मैंने राजू की ओर देखते हुए पूछा था।

"साढ़े आठ-नौ बज रहा होगा।" राजू ने थकी-सी आवाज में उत्तर दिया था और मेरे सीने पर सिर टिका दिया था।—"यार" उन्होंने कमजोर आवाज में कहा था—"थका डाला! और मल्लो! वही दायी उसने तो ऐसा डरा दिया था। अच्छा हुआ, ठीक समय पर अस्पताल पहुंच लिए कुछ देर और हो जाती तो···" राजू ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया। फिर कुछ क्षण बाद राजू बोले—"मम्मी, जीजी, जीजा जी, सभी आए थे। मम्मी अभी पप्पू के साथ वापिस गयी हैं। अंशुल भी मम्मी के ही पास है।" फिर थोड़ी देर की चुप्पी—"तुम ठीक हो ना?" उन्होंने पूछा था।

थोड़ी देर बाद एहसास हुआ था कि मैं जनरल वार्ड में हूं। आस-पास दूर-दूर तक पलंगों की लाइन है। मरीज हैं। सिर्फ स्क्रीन लगाकर—मेरे पलंग को उस भीड़ से काट दिया गया है।

"प्राइवेट वार्ड के लिए वेटिंग-लिस्ट में नाम लिखवा दिया है।" राजू ने बताया था—"फौरन तो मिलने से रहा। और फिर मैं ना जो तुम्हारे लिए भाग-दौड़ कर लेता या प्राइवेट वार्ड के लि

कहां था ?" राजू खुद ही प्रसंग को निकाल कर, उसके बारे में बात करते-करते झल्ला गये थे।

"मगर बुराई क्या है ?" मैंने कहा था ?

"क्या ?" राजू ने न समझने के अंदाज में पूछा था।

"जनरल वार्ड में ऐसी क्या बुराई है ? आखिर यहां भी तो मरीज आते ही हैं।"

"जो भी हो," राजू ने बात काटते हुए कहा था—"उम्मीद है कल तक प्राइवेट वार्ड मिल जायेगा।" थोड़ी देर वह चुप बैठे रहे थे। फिर—"अभी आता हूं," कह कर कहीं चले गये थे।

इक्कीस

…रात के नौ। लगभग दिन-भर में होश और बेहोशी के बीच रही थी और उस बीच रह-रह कर मुझे ऐसा लगा था जैसे मैं मर गयी हूं। हो सकता है सचमुच मरते समय ऐसा न लगता हो। उस समय सचमुच आदमी पता नहीं क्या सोचता हो ? उसे कैसा लगता हो ? न ये मालूम कि मरने के बाद उसे कैसा प्रतीत होता होगा ? जीवित रहते मौत की याद दिलाने वाले प्रतीक सचमुच मरते समय कितने महत्वपूर्ण होते होंगे, मुझे नहीं मालूम, लेकिन इस दस-बारह घण्टों के अन्तराल को अब अपने होश-हवास में परखते ऐसा लगता है जैसे मैंने यह मान लिया था कि मैं मर चुकी हूं।

"आज हम तुम्हें नहलायेंगे।" राजू की आवाज़ बेहोशी की उस गहरायी में जैसे तेज़ होती जाती।

"नहीं राजू," मेरी आवाज़—फिर सब गड्मड हो जाता।

राजू मुझे नहला रहे हैं। बहुत तेज़ रोशनी है। राजू ने आंखों पर चश्मा लगा रखा है।

"अच्छा नहीं लगता···" मैं कह रही हूं फिर हमारा बाथरूम बदल जाता है। वहां सफेद टाइल्ज हैं, लम्बा-सा चीनी का टब है, तरह-तरह के नल हैं। राजू और मैं हम दोनों उस टब में।

"अच्छा नहीं लगता···" मैं कह रही हूं। राजू तौलिये से मेरा शरीर सोख रहे हैं। फिर बाथ-टब में एकदम मुझे खून नजर आता है। अन्दर मैं अकेली रह जाती हूं। बाथरूम का दरवाजा बाहर से बन्द है और उसका अन्दर का बोल्ट उखड़ा हुआ है—"राजू, दरवाजा खोलो," मैं चीखती हूं, न जाने कब तक चीखती रहती हूं और फिर एकदम वैसा ही लगता है। बड़े अचम्भे में पड़कर मैं सोचती हूं कि मैं तो मर चुकी हूं। राजू यहां कहां आयेंगे और बस, अंधेरा ही अंधेरा। फिर किसी दूसरे क्रम में यही सब बातें जुड़ने-टूटने लगती हैं।

"मगर तुम खुद ही तो कहते हो···"उस दिन जब राजू मुझे नहलाने के लिये अड़े हुए थे तो मैंने उनसे कहा था—"कि कुल मिलाकर गिनी-चुनी चीजों का नाम ही जीवन है। सब कुछ सोच-समझकर मौके-मौके से करने का है। वर्ना चीजें हैं ही कितनी जो बहुत चलेंगी···और जब भी यह स्थिति आ जाये, समझ लो चट्टान पर बैठकर आसमान ताकने के अलावा हम किसी काम के ही नहीं रहे।"

"तुम भी यार कमाल की बात करती हो," राजू ने तंग आये स्वर में कहा था—"अब कह दिया होगा किसी मूड में·· चलो यार, जल्दी करो!"

बाद में शॉवर के नीचे उन्होंने कहा था—"यार, तुम्हारे हमारे बीच भी कोई चीज पुरानी हो सकती है? तुम्हारी हर अदा, हर भाव मेरे लिए तो हमेशा नया रहेगा। मैं तो यह चाहूंगा कि तुम्हारे बच्चा हो तो भी एक पल को मैं तुम्हारे पास से न हटूं। लोग कहते है कि उस हालत में औरत को देखने के बाद · लेकिन इसे पत्थर पर लिखी बात समझो कि मेरे लिए तुम में कुछ भी फर्क नहीं आ सकता···मैं हमेशा यही चाहूंगा··· करूंगा · !"

राजू और पप्पू दोनों वार्ड में आये थे। पप्पू ने बगैर [illegible] मुझ से तबियत के बारे में पूछा और फिर पास की बैंच पर बैठ[illegible]

बाईस

कुल मिलाकर पंद्रह दिन मुझे हास्पिटल में रुकना पड़ा था।

प्राइवेट वार्ड का इन्तजाम अंत तक हो नहीं पाया था। हां, हास्पिटल से छुट्टी होने के दो-तीन दिन पहले एक शाम राजू ने बताया कि आज एक वार्ड खाली हुआ है। तब तक मेरी हालत संभल गयी थी।

"लेकिन अब तो बेकार-सा लगता है।" मेरे बोलने से पहले ही राजू ने कहा था—"अब आज कल में तो छुट्टी होने वाली है, क्यों ?" उन्होंने मुझ से पूछा था और मेरे मना करने पर फिर इस संबंध में कुछ बात नहीं की थी।

पप्पू दो-तीन दिन बाद पूना वापिस चला गया था और जाने से पहले राजू ने उसे अच्छी तरह समझाया था कि इस दुर्घटना के बारे में वह वहां किसी से कुछ न कहे। पहले दो दिन तक रात को घर की पुरानी नौकरानी सक्को मेरे साथ रही। उसके बाद—"वह तो डाक्टरों से जान-पहचान की वजह से उन्होंने दो दिन को भी अटेंडेंट अलाउ कर दिया।" राजू ने मुझे बताते हुए कहा था—"वरना ऐसा होता थोड़ी है।" बहरहाल, इसके बाद की रातें मुझे अकेले ही बितानी पड़ी थीं।

राजू की मम्मी पहले दो-तीन दिन अस्पताल आयी, फिर जैसे ही मेरी हालत कुछ बेहतर हुई थी, उनका आना-जाना बन्द हो गया।

डाक्टर ने कहा था कि मैं इसे दूसरा जन्म समझूं। अगर थोड़ी सी देर और हो जाती तो मेरे बचने की कोई संभावना नहीं थी। इतने दिन बाद गर्भपात अटेम्पट करना सीधी-सीधी मौत को दावत देना था।

"खून इतना निकल गया," डाक्टर इंचार्ज ने मुझे बताते हुए कहा था—"और मैं डरा नहीं रही, लेकिन, दिस कैन हैव फार रीचिंग इफेक्ट्स। बहुत अच्छा होगा अगर ऐसा न हो, लेकिन हो सकता है, कोई हिस्सा सीरियसली डिफेक्ट हो गया हो और सब कुछ जो आपने पिया

था—आपको मालूम नहीं सारे में छाले पड़ गये हैं। आप लोगों को किस तरह समझाया जाय ! पढ़े-लिखे समझदार लोग ऐसी हरकतें करते हैं।"

दवाएं चलती रही थीं। न जाने कितनी तो ग्लूकोज़ की बोतलें ही चढ़ायी गयी थीं।

छुट्टी होने के बाद जब मैं घर लौटी तो भी कमज़ोर इतनी थी कि मैं मुश्किल से ही कुछ कदम चल पाती और खून रुकने का नाम ही नहीं लेता था। अंशुल तक को संभाल पाना मेरे लिए एक समस्या हो गयी थी।

"यह सक्को से क्या तुमने काम पर आने को कहा है ?" एक दिन राजू ने चुभते-से स्वर में मुझसे पूछा था।

दरअसल, सक्को मेरी हालत देखकर खुद ही रोज़ घर आने और छोटे-मोटे काम करने लगी थी। यहां तक कि कभी-कभी वह खुद ही खाना भी बना जाती।

"मेरा मतलब यह है कि खाने-पीने के ही तो लाले पड़े हुए हैं, जाने कहां से जैसे-तैसे करके अस्पताल और दवाओं का खर्चा पूरा किया है। क्या समझती हो डाक्टर की फीस ही···!" वह एक पल को चुप हुए— "इतने पैसों में तो एक बच्चा ही पल जाता।"

जाने क्या हुआ और मेरे हाथ-पैर एकदम कांपने लगे थे।

"यह सब कुछ " मैंने कांपते हुए तेज़ स्वर में राजू को सम्बोधित करते हुए कहा था—"यह सब कुछ क्या मेरे करने या चाहने से हुआ है ?"

"देखो, भावुक होने से काम नहीं चलेगा।" राजू ने एकदम सधी हुई आवाज में कहा था—"ज़रा प्रैक्टिकल बनो। मेरी ! तुम्हारी ! भोगना तो हमें ही पड़ेगा। चलो, मेरे कहने और करने से हुआ है, तो मैंने जानकर तो किया नहीं था। मुझे सपना तो आया नहीं था कि यह सब खूता हो जायेगा। अब जो भी हुआ भुगतना तो पड़ेगा ही।"

"ठीक है," मैं कांपती हुई बिस्तर से उठी थी और पास की टेबिल पर रखी दवाओं की शीशियां उठा-उठाकर फर्श पर, सामने की दीवार पर मार-मार कर तोड़नी शुरू कर दी थीं।

"यह क्या कर रही हो ?" राजू ने सकपकाये से स्वर में [illegible]कर पूछा—"क्या पागल हो गयी हो ?" राजू ज़ोर से चिल्लाए

बढ़कर मेरे हाथ पकड़ना चाहे थे। सारे शरीर की शक्ति मेरी बांहों में आ गयी थी। एक-एक शीशी, थर्मामीटर, पानी का गिलास कुछ नहीं बचा था। और फिर मैं एकदम फूट-फूट कर रोयी थी। ऊंची आवाज में, चिल्ला-चिल्ला कर, बिलख-बिलख कर, मेरे पूरे शरीर में कंपकपी शुरू हो गयी थी और मैं बिना यह सोचे कि मेरी आवाज कहां-कहां पहुंच रही होगी दहाड़ें मार-मार कर रो रही थी। मुझे देखकर अंशुल भी चीख-चीख कर रोने लगा था और राजू उसे गोद में उठा कर कमरे के बाहर निकल गये थे। मैं उसी तरह तकिये में मुंह छिपाये फूट-फूट कर रोती रही और जाने कब रोते-रोते ही बेसुध हो गयी। थोड़ी देर बाद जब मेरी आंख खुली तो भी रोने से मेरे मन का तनाव कम नहीं हुआ था। पूरी बात याद कर करके मैं फिर बिल्कुल दीवानों-सी कमरे में टहलने लगी थी—राजू के इन्तजार में।

मैं सोचती रही थी, उन तमाम बातों को जो मुझे राजू से कहनी थीं। वह सब बातें जो जाने कब-कब मेरे दिमाग के अंधे कोने में ढेर होती गयी थीं। वह सब छोटी-बड़ी ज़्यादतियां, वह सब न महसूस होने वाली बातें एकदम बिच्छू के डंक बन कर सिलसिलेवार मुझे डस रही थीं। कहीं हमारे दिमाग़ के पिछले हिस्से में हम बिच्छू पालते हैं—जाने-अनजाने इन बिच्छुओं को बड़ा करते हैं और हमारे सारे निर्णय शायद इन बिच्छुओं के डसने की देन ही होते हैं। उन डंकों का विष ही हमारी शक्ति होती है। लोगों की छोटी-छोटी बातें, ज्यादतियां, हमारे द्वारा सहे गये, और सामयिक स्तर पर ओवर-लुक कर दिये गये अपमान—यह जो धीरे-धीरे इकट्ठे होते हैं, धीरे-धीरे ढेर हो जाते हैं, इन ढेरों में बिच्छू जन्म लेते हैं, पलते हैं, शक्ति पाते हैं।

थोड़ी देर बाद अंशुल अकेला घर में आया। वह अपने छोटे-छोटे अस्थिर कदम बढ़ाता हुआ मेरी ओर बढ़ा। उसके मुख पर आंसुओं के निशान थे। अंशु ने मेरी ओर देखा था और फिर से रोना शुरू कर दिया था। एकदम दौड़ कर मैंने अंशु को अपने कलेजे से चिपटा लिया था।

"नहीं बेटा ! रोते नहीं !" एकदम मेरी आवाज़ बहुत गंभीर और संतुलित हो गयी थी—"बेटा रोता थोड़ी है।" अंशु हिचकियों से रोता रहा और मैं उसी तरह उसे सीने से चिपटाये फर्श पर बैठी रही, उसके सिर

पर हाथ फेरती रही, उसकी पीठ सहलाती रही। जब वह रो-रो कर चुप हो गया था तो मैंने कहा था—"अंशु बेटा, तुम रोते क्यों हो ?" इस पर अंशु ने फिर से ठुनकना शुरू कर दिया था और मैं उसकी ओर देखकर जोर से हंस पड़ी।

"अरे, छी-छी बेटा, कितना बुरा लगता है। कहीं अच्छे बच्चे भी रोते हैं।"

"तुम भी तो रोती…" अंशु ने डबडबायी आंखों से मेरी ओर देखते हुए कहा।

"हम…? हम कहां रोते हैं ?" मैंने मुस्कराते हुए उसकी ओर देखते कहा था—"देखो, हम तो हंस रहे हैं," और आवाज से हंसते हुए मैंने फिर अंशु को चिपटा लिया, उसे प्यार करती रही। अंशु की कमीज की जेब और निकर, दोनों में टॉफ़ीज भरी हुई थीं। मैंने बाथरूम में ले जाकर उसका मुंह-हाथ धोया, कपड़े बदले और उसके बाद चिड़ों की वह किताबें लेकर बैठ गयी जो पप्पू ने अंशु को दिलायी थीं। बच्चे पता नहीं, किस तरह सब-कुछ समझ लेते हैं ? पूरे समय अंशु मेरे साथ इस तरह रहा था जैसे वह पूरी स्थिति समझ रहा हो। न उसने कोई जिद की थी न अपनी ओर से कुछ कहा था। मैं जो कुछ बातें उससे करती रही, उन्हीं में खोया रहा। मुझे हंसते देखकर ठहाके लगा-लगा कर हंसा, मेरी बातें बड़े ध्यान गौर से सुनता रहा, न कोई सवाल, न शिकायत।

जब तक राजू लौटे वह बच्चे को [illegible] थी, फिर से [illegible] लगी थी। वह सब सवाल जो अचानक सिर उठा कर हमला करते रहते थे फिर अपनी छुपने की जगहों को लौट गये थे और इस सब की जगह रह गया था एक खालीपन, एक और दूरी।

तेइस

राजू शाम को देर से लौटकर चुपचाप बैठे रहे थे और सिगरेट पर सिगरेट सुलगाये, किसी मैगज़ीन (जो शायद पप्पू भूल गया था) के पन्ने पलटते रहे। अन्त में वह उठकर मेरे पास आये।

"कल तुम्हें डाक्टर के पास जाना है। याद है?" उन्होंने दरवाज़े पर ही खड़े-खड़े सिगरेट का धुआं छोड़ते हुए कहा। मैं चुप रही।

"सुना?" उन्होंने फिर पूछा था, और मेरे उत्तर देने से पहले ही मेरे पास आकर बैठ गये थे।—"अब तो तुम से भी कुछ कहना मुश्किल हो गया है। ठीक है, जब कोई गलत मतलब निकालने पर ही तुला बैठा हो तो! तुम्हीं बताओ, मैंने ऐसी कौन-सी गलत बात कही थी? अपनी हालत क्या किसी से ढकी-छुपी है? आजकल तो ओढ़ लो या बिछा लो में से भी, न तो पूरी तरह हम ओढ़ने में समर्थ हैं, न बिछाने में। वह लाखों का कर्जा तो आप अलग ही छोड़ो, उसके बारे में तो सोचना भी फजूल है, ये डे टू डे के जो छोटे-छोटे कर्जे हैं, वही अब इतने हो गये हैं कि···! उधर नारायण। सब साले इसी दिन के लिए साथ थे। तुम्हारे आपरेशन के समय में कुछ पैसों के लिए उसके पास गया, उसने साफ इनकार कर दिया। इससे पहले भी तुम्हारे बारे में मुझसे जाने क्या-क्या कहता रहता था। अगले दिन ही मैंने जितने पैसे उससे लिए थे, ले जाकर उसके मुंह पर मारे और कहा कि अब मैं दूकान पर नहीं आऊंगा। उसने तो ये तक कहा कि मैं रोज़ के केश-बाक्स से पैसे उड़ाता रहा हूं। तो यह है! हम तो न किसी से कह सकते न किसी के सामने रो सकते। और तो और, अगर ऐसी हालत में हमारे मुंह से अगर कुछ ऐसा-वैसा निकल जाए, तो हमारे अपने, करीबी हमें माफ़ तक नहीं कर सकते। तुम यह नहीं सोच पाई कि किसी वजह से मेरा दिमाग खराब होगा? कहीं कुछ उल्टा-सीधा हुआ होगा, तभी तो मेरे मुंह से इतनी घटिया

बातें निकलीं। क्या मैं नहीं चाहता कि तुम आराम से रहो? क्या मैंने कभी तुम्हें आराम से रखने की कोशिश नहीं की है? आप कहें तो एक नहीं दस नौकरों को रखिये, क्या मजाल जो मैं मना करूं? कहीं से भी लायेंगे, अपनी खाल, चमड़ी गिरवी रखकर, बेच कर। तुम्हें खुश देखने से यह क्या ज्यादा है? नहीं, बताओ?"

थोड़ी देर के लिए चुप्पी रही थी।

"यह सब परेशानियां क्या मेरा दिमाग चौपट करने के लिए काफी नहीं हैं कि ऊपर से पप्पू की मौजूदगी! रही-सही, कसर उसने पूरी कर दी। मोटर कहां है, तो फ्रिज कहां गया, तो प्राइवेट नर्सिंग होम क्यों नहीं, तो बिल्कुल दिमाग की चूलें हिल गयीं। ऊपर से यह फिक्र कि किसी भी तरह कहीं से करके इस सूअर की औलाद नारायण के पैसे वापस करना है। और फिर तुम्हारी तबीयत। सुनने वाली तो एक तुम्हीं हो और तुम्हारे सामने भी मैं कुछ कहकर अपने दिल का बोझ हल्का नहीं कर पाया।"

बहरहाल, सब फिर ठीक हो गया। अगले दिन राजू मुझे डाक्टर के पास लेकर गये। उन्होंने सक्को को नौकर रखने पर भी जोर दिया था, लेकिन मैंने इनकार कर दिया था।

"कुछ काम भी तो हो," मैंने राजू को समझाते हुए कहा था—"और अब तो मैं ठीक होती जा रही हूं, सब हो जायेगा।"

"यार अपने फिर भी अपने ही होते हैं," उस दिन अस्पताल से वापस लौटकर घर पहुंचने पर राजू ने कहा था। बिना किसी संदर्भ के जोड़कर कही गयी यह बात सुनकर मैं चुप रही थी।

"सुना तुमने?" मुझे चुप देखकर राजू ने फिर से तोड़ा था।—"रिश्ता रिश्ता ही होता है। दोस्ती-वोस्ती सब देख ली। सांप के काटे का इलाज है, दोस्त के काटे का नहीं। रिश्तेदार लाख आपस में लड़ें-झगड़ें, कितनी दुश्मनी हो जाये, लेकिन खून पानी से गाढ़ा होता है। और मैं तो" राजू ने मेरे और नजदीक आते हुए कहा था—"अभी जस्ट कुड नाट बिलीव इट। जब जीजा जी ने तुमसे कहा। मेरे व सम्बन्ध ही क्या है? न कभी मैंने उनसे कोई मदद ली, न

तो हो•••!"

बात यह थी कि जीजाजी दवाइयों की कोई दूकान खरीदना चाहते थे और यह कि राजू उस दूकान को चलायें।

"क्या दूकान तुम्हारे नाम से खरीदी जायेगी?" मैंने राजू की बात सुनने के बाद पूछा। राजू थोड़ी देर तक सोचते रहे—

"जीजा जी अपने या जीजी के नाम से तो लेने से रहे, क्योंकि दोनों गवर्नमेंट सर्विस में है।" राजू ने सोचते हुए कहा। फिर जैसे एकदम सारी बात उनकी समझ में आ गयी थी—"यार, तुम भी कैसी बात करती हो? मेरे नाम से खरीद कर वह दूकान क्या ज़ब्त करायेंगे? सारे कर्जदार साले फौज लेकर हमला कर देंगे। खैर," राजू ने इस बात को जैसे अलग करते हुए कहा—"किसी के नाम से भी लें, तै यह हुआ कि दफ्तर से पहले सुबह दस बजे तक वह दूकान पर बैठेंगे, दस से साढ़े पांच बजे तक मैं, और इसके बाद फिर जीजा जी। क्या बुराई है?" राजू ने मेरी ओर देखकर कहा था—"दूसरों की दूकान पर बैठने से तो अच्छा ही है।"

"लेकिन," मैंने रुकते-रुकते पूछा था—"आपको दवाओं के बारे में क्या नालिज है? उसके लिये तो किसी सार्टिफिकेट की जरूरत होती है ना?"

"वह सब छोड़ो, बस कुछ दिन परेशानी रहेगी तो किसी को नौकर रख लेंगे। और तुम जानती हो," उन्होंने गर्व से मेरी ओर देखते हुए कहा—"अपने लिए कुछ ज्यादा मुश्किल नहीं होता। हार्डवेयर के बारे में क्या मालूम था? या नारायण की खेती में जो इतनी मदद की, वह हमने पहले खुद कब की थी? वह तो सब हो जायेगा, तुम फिक्र मत करो।"

और राजू जीजाजी के साथ दूकान की खरीदारी में लग गये थे।

चौबीस

पूना से मम्मी की लम्बी-चौड़ी चिट्ठी आयी थी और इससे पहले कि मैं जवाब लिखूं ज्योति घर आ पहुंची थी।

चिट्ठी पढ़ कर मुझे यह अंदाज़ हुआ था कि अगर पप्पू ने पूरा-पूरा नहीं तो भी काफ़ी कुछ घर पर बता दिया था।

"अगर तुम लोगों को," मम्मी ने चिट्ठी में लिखा था—"कोई भी परेशानी है तो तुम्हें कम से कम मुझे तो लिखना चाहिये था। तुम पूरी-पूरी बात मुझे बिल्कुल साफ़-साफ़ शब्दों में लिखकर भेजो और अगर संभव हो सके तो फ़ौरन पूना पहुंचो। जब से पप्पू वापस आया है, मैं बराबर तुम लोगों के बारे में सोच-सोच कर परेशान हूं।"

इसके अलावा पप्पू और जमीला के बारे में था कि—"तुम परेशान मत होओ. जमीला उसके घर वालों को मिल गयी है और अब उसकी शादी भी हो चुकी है, पप्पू ज़रूर यह खबर सुनकर दुखी है।"

चिट्ठी जान बूझ कर मैंने राजू को नहीं दिखायी। और इससे पहले कि मैं इसका उत्तर दे पाती, ज्योति घर पहुंच गयी।

ज्योति के बारे में जो चीज़ मुझे सबसे आश्चर्यजनक लगती रही है वह यह कि वह कितनी सुविधापूर्वक चीज़ों को [illegible] चलती है। बड़ी-से-बड़ी परेशानी या मुश्किल का उस पर कोई [illegible] नहीं पड़ता। वह चीज़ों को जैसी हैं, एक पल में [illegible] धरातल पर ले आती है। बचपन से मैंने उसे [illegible] वार भी ज्योति ने घर पहुंच कर न किसी तरह का [illegible] और ना ही कोई सवाल किया था। और पहुंचने के [illegible] उसने घर की सारी जिम्मेदारियां अपने हाथों [illegible]

"तुम बहुत कमज़ोर हो गयी," उसने [illegible] बनाते हुए कहा था—"कुछ दिन अच्छी तरह से [illegible]

मुझे इस बात का अन्दाज़ा था—यही कि मेरे सारे भाई-बहन सबसे ज़्यादा मुझे ही चाहते हैं। जाने उसके कारण क्या रहे हों ? जो भी हो, लेकिन पप्पू, ज्योति और घर के सब छोटे भी न केवल मुझे चाहते थे, बल्कि एक खास तरह से मुझसे डरते भी थे किसी भी काम को शुरू करने से पहले, कहीं एडमिशन लेते समय, कोई भी बड़ा निर्णय करने से पहले यह लोग मेरी राय जरूर लेते थे। अब जब मैं सबसे इतने दूर थी, तो भी खत लिख-कर ही यह लोग कम-से-कम मुझे बताते जरूर थे। यह संबंध इस प्रकार जाने अब कितने दिन और चल पायें, क्योंकि मुझे लगता है, फर्क तो हर बात से पड़ता है। कल पप्पू आया था, यहां के हालात देखकर गया, उसके रवैये में कुछ-न-कुछ अंतर आना बिल्कुल स्वाभाविक है। हमारी इस हालत को देखकर उनके उस विश्वास को जो इन लोगों को मुझमें है, चोट पहुंचती होगी। उनकी नजरों में मेरा कम होना समझ में आता है। अब मैं खुद भी उस दृढ़ता के साथ उनसे कोई बात नहीं कह सकती'''मेरी इन बुनियादों ने जो केवल कुछ समय से मेरी हैं, न सिर्फ मुझे अपने भूत की बुनियादों से डिगा दिया है, बल्कि अब वह खुद खोखली होकर मेरे अस्तित्व को अजीब बनाये दे रही हैं। कल तक जो सच था, अगर उनका वही व्यवहार भी मेरे साथ रहा तो भी उसके पीछे, मैं जानती हूं, केवल एक दया-भाव रह जायेगा। सब वैसा ही करेंगे, सिर्फ इसलिए कि कभी ऐसा ही होता था।

बहरहाल, ज्योति के आने से बहुत अन्तर पड़ा और मुझे यह पूरी तरह पहली बार महसूस हुआ कि मैं सचमुच बहुत कमजोर हो गयी हूं। तरह-तरह के दर्द, चक्कर, और रह-रह कर यह लगना जैसे मेरा दिल बैठा जा रहा है, और घबराहट। दवाएं फिर आ गयीं और मैंने फिर से खाना भी शुरू कर दीं, लेकिन मेरी हिम्मत राजू से यह पूछने की नहीं हुई थी कि इस बार इस सब कुछ के लिये पैसे कहां से आ रहे हैं ?

"मैं कितने ही केमिस्ट्स से मिल चुका हूं।" राजू ने बताया था—"और सबका यही कहना है कि धंधा अगर थोड़ी-सी समझदारी से किया जाये तो घाटा होने का तो सवाल ही नहीं उठता। अब आप कितना कमाते हैं, यह आपकी हिम्मत की बात है। यार," राजू ने बहुत

उत्साह से आंखें फाड़ कर हाथ हिलाते हुए कहा था—"इसी धंधे में लोग लखपति बन गये हैं, सालों ने बिल्डिंग तान ली है। एक है, शफी करके, हमारे घर के सामने पहले एक डाक्टर था शर्मा, अब तो मर गया, उसके यहां यह कम्पाउंडर हुआ करता था। आज उसकी छः मंजिली तो बिल्डिंग है, जीप है, स्कूटर है साले के ठाट हैं। इस जमाने में भी पट्ठा यारों के साथ शिकार खेलता फिरता है। वैसे कुछ लोगों का कहना यह भी है कि वह अफीम के धंधे में बना है" राजू ने रौ में बोलते-बोलते ही जैसे ऊंची आवाज में सोचा था—"कहने को तो लोग बहाना ढूंढ़ते हैं, मेरे बारे में लोगों का ख्याल है कि मैंने औरत···" और एकदम सकपका कर राजू ने वाक्य अधूरा ही छोड़ दिया और खिसियानी-सी हंसी हंसे।

"बहरहाल," थोड़ी देर बाद उन्होंने जोड़ा,—"अगर इस बार ही लठ लग गया तो दलद्दर दूर हो जायेंगे। सारे नियम और असूल साले खूंटी पर टांग के जितनी भी बेईमानियां है, सब करूंगा। अपने दोस्तों को ही दो-नम्बर की और एक्सपायर्ड मेडिसीन बेचूंगा—सारे काले धंधे करूंगा। बस, तुम देखो कुछ दिनों में ही मैं कालीन उलटने वाला हूं। सब साले देखते रह जायेंगे, जरा शुरू तो हो जाये। तुम समझती हो मैं भावुक हूं, जीजा जी को समझ नहीं रहा, मैं खूब समझता हूं। क्या उनकी मेंटिलिटी मुझे मालूम नहीं है? आज साले हमारे ही टूटे पैरों पर खड़े होकर हमें दलदल से खींच निकालने का दम भर रहे हैं। मुझे सब मालूम है, लेकिन कोई दूसरा रास्ता भी तो हो? अब हमने भी मौके से फायदा उठाना सीख लिया है—अस्पताल का खर्चा और सब दूसरे पैसे मैंने उन्हीं से लिये हैं।"

राजू दूकान की खरीदारी में लग गये। कई रातों को वह देर से लौटे, घर पर भी दिन का अधिकांश वह जोड़ने, घटाने, दवाओं की कीमतें लगाने में बिता रहे थे। दो-तीन मोटे-मोटे रजिस्टर हर समय उनके सामने खुले रहते और वह हरदम किसी न किसी हिसाब में उलझे रहते।

"इतने मौके की दुकान है,"—वह आप ही आप खुश होकर कहते—"वह तो सिन्धी का लौंडा साला निकम्मा था, वरना ऐसी दूकान! अरे बेचना समझ में ही नहीं आता। मार्किट के नुक्कड़ पर, [illegible]

इतने पास और उस ऐरिये में प्राइवेट प्रेक्टीशनर्स कितने हैं ! बस तुम त
यह समझ लो कि हम लोगों की तकलीफों के दिन लद गये । थोड़े ही दिन
में तुम्हारे कदमों में पैसों के अंबार होंगे । फिर करना तुम, ऐश कहीं घूम
चलेंगे—क्यों ?"

ज्योति और राजू के बीच भी स्थिति वह नहीं थी जो मेरी दूसरी
बहनों और राजू के बीच थी । ज्योति के साथ आमतौर पर राजू क
कोई टेंशन नहीं रहता था—"बहुत अच्छी बच्ची है," राजू उसके बा
में बुजुर्गों के अंदाज़ में कहते, यह जानते हुए भी कि ज्योति मुझ से बड़
थी, और फिर एकदम मेरी ओर देखकर कहते—"बस, थोड़ी सूर
और अच्छी होती तो । क्या कमीनापन है, भला उस जैसी लड़की के
लिए लड़के नहीं मिल रहे । जिस घर में जायेगी स्वर्ग बना देगी । सा
घर वाले उसके आगे पीछे दौड़ेंगे । बस थोड़ी शकल···।"

ज्योति की शकल एक तो वैसे भी मामूली थी और चश्मा लगाने
बाद वह अपनी उम्र से भी ज्यादा लगने लगी थी । राजू उसकी
अच्छाई करते हुए अक्सर यह जोड़ देते—"अपनी तो उससे पाक
मुहब्बत है ।"

जब से दूकान का सिलसिला हुआ था, राजू अक्सर मम्मी औ
जीजी के उधर भी जाने लगे थे—"बातचीत तो सिर्फ जीजा जी से ह
होती है," उन्होंने मुझे आश्वासन देते हुए कहा था—"मम्मी औ
जीजी से तो···"

ज्योति की भी राजू की मम्मी से ठीक निभ जाती थी, इसलिए व
भी उनके पास जाती-आती रहती और राजू की मम्मी मेरे संदर्भ में उस
से भी कोई बात कहते न चूकती ।—"जब अपनी औलाद में ही खराबी
हो तो किसी दूसरे का क्या रोना रोना ? हमारे बेटे में ही समझ होती
तो यह दिन थोड़ी आता···" उन्होंने गुजरे दिनों का पूरा ब्यौरा देते हुए
ज्योति को बताया था—"और काने को अगर अंधा मिल जाये तो क्या
होगा ? तुम्हारी बहन ने रही-सही कसर भी पूरी कर दी ।"

राजू की मम्मी से तमाम हालात मालूम होने पर भी ज्योति ने कोई
अधिक सवाल नहीं किये थे । घर के काम से निपटने के बाद वह अक्सर

किसी समझी-बूझी वजह के मैंने वहां जाने का ख्याल दिल से निकाल दिया था।

"हम लोग कुछ दिन बाद साथ ही जायेंगे," मैंने ज्योति से कहा था—"अब अभी-अभी राजू ने नया काम शुरू किया है; अगर मेरे पीछे-पीछे वह भी पूना आ गये तो यहां सब गड़बड़ हो जायेगी। मुझे मालूम है मेरे जाने के थोड़े दिन बाद ही वह दूकान की परवाह किये बिना वहां पहुंच जायेंगे।"

मेरी इस बात पर ज्योति के चेहरे पर मुस्कराहट फैल गयी थी। "इश्क में कमी नहीं आयी।" उसने दबी आवाज़ में कहा और मैं यूं ही हंस दी थी।—"लेकिन तुम मम्मी को समझा देना, यहां की फिक्र करने की जरूरत नहीं। सब ठीक है, और अगर नहीं है तो कुछ दिनों में हो जायेगा।"

ज्योति के जाने से एक रात पहले राजू से बात हुई थी।

"कल जा रही है ज्योति ?"

"हां" मैंने जवाब दिया था।

"सुनो, क्या ऐसा नहीं हो सकता कि ज्योति अंशुल को अपने साथ पूना ले जाये ?" राजू ने मेरी ओर देखते हुए कहा था—"मेरा मतलब है, तुम्हारी भी तबियत अभी पूरी तरह ठीक नहीं हुई है, यहां रहेगा तो तुम्हें परेशान करेगा। अब वह ज्योति से इतना हिल भी गया है कि खुशी-खुशी चला जायेगा।"

मैंने दो-तीन बहाने करके इस बात को टालना चाहा, लेकिन जब राजू को जोर देकर कहते देखा तो मैंने 'ठीक है' कह दिया और अगले दिन अंशुल ज्योति के साथ पूना चला गया।

अंशुल को भेजने से पहले भी मुझे थोड़ा बहुत अंदाज़ा तो था ही कि उसके जाने का असर मुझ पर ही पड़ेगा, लेकिन शायद मेरी अपनी बीमारी और कमज़ोरी और उस पर राजू के ज़ोर देकर कहने ने मुझे सख्ती के साथ मना करने से रोक दिया। अपनी गल्ती का पूरा एहसास मुझे अंशु के जाने के बाद ही हो पाया था।

एक दिन में ही मुझे फर्क मालूम हो गया था। घर की दीवारें जैसे

एकदम दूर चली गयी थीं और कोने-कोचरें और घर के वैसे कभी न नज़र आने वाले हिस्से जो खाली थे, एकदम घर की दूसरी चीज़ों पर हावी हो गए थे। वह एहसास कि महीनों से बिछी मसहरी के नीचे पता नहीं क्या-क्या जमा हो चुका होगा, या छत पर उघड़ती हुई कलई की परतें जो किसी भी समय अगर मैं पलंग पर आंख खोले लेटी हूं तो पड़ सकती हूं, या सोफे पर बिछे जालीदार वस्त्र जो न केवल मैले हो चुके हैं बल्कि इस काबिल हो गये हैं कि उनकी चिन्दियां बनाकर छोटे-मोटे कामों में लाया जाये, या राजू···राजू की मम्मी···जैसे अंशु का न होना मात्र ही इन चीज़ों के अजीब होने और मेरे ऊपर चौबीस घण्टे छाये रहने का बहाना हो गया था अंशु बीच में आ-आ कर उस जंजीर को तोड़ जाता था जो अब कड़ी-कड़ी जुड़ कर मुझे जकड़े ले रही थी।

राजू इन दिनों सुबह जल्दी उठते, सुबह का नाश्ता खुद बनाते, चाय मुझे भी बनाकर पिलाते फिर खाने के लिए या तो बाजार से कुछ ले आते, या कच्ची सब्जी लाकर दे देते और मैं चपातियां और साग या और कोई आसानी से बनने वाली चीज बना देती। दोपहर का खाना खाकर कोई दस बजे राजू दूकान जाते और फिर शाम को कोई छः बजे तक वापस आते। एक-दो बार इतवार को, जिस दिन उनकी दुकान बन्द रहती थी राजू मुझे मजबूर करके फिल्म दिखाने भी ले गये। धीरे-धीरे खर्चे के लिये पैसे आने लगे थे। पहले महीने में ही घर के खर्चे में थोड़ी सी आसानी हुई और राजू जो एक-एक दो-दो करके फुटकर सिगरेट खरीदने लगे थे, फिर से पैकेट लेने लगे थे। शुरू-शुरू में तो अपने उत्साह में राजू शाम को देर से भी लौटते और वापस आकर भी दुकान ही की बातें होती रहतीं।

"दुकान के सामने से कॉलिज की लड़कियां निकलती हैं" उन्होंने बताया था—"आज तो मैं हैरान रह गया। एक लड़की देखी, उम्र मुश्किल से सत्रह-अट्ठारह होगी और देखने में [illegible] लगती थी—वही बेल बाटम और वही [illegible] है—बड़े-बड़े रंगीन छपके जिनकी पहले [illegible] रजाइयां-दुलाइयां बनती थीं। तो खैर [illegible]

की उम्र की दो-तीन लड़कियां और थीं। मुझे प्रिस्क्रिप्शन दिया जिसे मैं देखकर ही समझ गया कि उसने खुद लिखा है। पता है परचे में क्या लिखा था? टेव्स ओवराल-फैमिली प्लानिंग की गोलियां! और कॉफिडेन्टली जैसे कुछ ऐस्प्रो, एनासिन खरीद रही हो। खैर मैंने तो दी, लेकिन मनमानी कीमत चार्ज की और जब-जब मैं उसके बारे में सोचता हूं, हिल जाता हूं। यह हाल हो गया है," राजू ने खड़े-खड़े हाथ मलते हुए कहा था।

"ये भी तो हो सकता है," मैंने राजू के रुकते ही कहा था—"कि किसी बड़े ने उससे मंगायी हों?"

"वाह," राजू फौरन तेजी में बोले थे—"यह चीजें भी ऐसी होती हैं कि बच्चों के हाथ मंगायी जाएं! और नहीं—उसके चेहरे से लग रहा था कि खुद अपने लिए खरीद रही है। अरे, यह तो कुछ नहीं, एक दिन तो ऐसी ही एक लड़की अबोर्शन का इंजेक्शन खरीद कर ले गई थी। मगर यार, उसकी सूरत! पता नहीं कौन हिम्मत वाला था जो उस पर मेहरबान हुआ।"

"क्या यह नहीं हो सकता कि वह दोनों विवाहित रही हों? कोई चेहरे पर तो नहीं लिखा होता कि कौन विवाहित है और कौन कुंआरा?"

एक पल को चुप रहने के बाद राजू ने बहुत ही दर्द-सी आवाज़ में कहा था—"हां, चेहरे पर तो नहीं लिखा होता।"

धीरे-धीरे राजू का मन-पसन्द टॉपिक लड़कियां होता जा रहा था। यह पहली लड़की, इसके साथ गुज़रती लड़की, उनकी ओर घूर कर देखती लड़की।

"आप इतने बड़े लेडी-किलर कब से हो गए?" एक दिन राजू की बात सुनते-सुनते मैंने पूछा था और राजू एकदम शर्मा गये थे।

"अब लेडी-किलर तो क्या," उन्होंने बात को संभालते हुए कहा था—"मगर अब तुम्हारे पति हैं तो कुछ तो होगा ही···"

"तुमने यह क्यों कहा कि हमारी अरेंज्ड मैरिज है।" जैसे राजू

मगर सालों ने मुझे भी मजबूर करके पिलाई। जब थोड़ी हो गयी तो, खैर बातचीत तो पहले ही से चल रही थी, नारायण ने आंख मार कर उस प्रोपराइटर से कहा कि 'क्यों यार कुछ है ?' मैं वाईगॉड, कुछ नहीं समझा। तब भी नहीं जब उसने नारायण से बहुत याराना अंदाज़ में कहा कि है क्यों नहीं, और जोरदार है। खैर, उसने किसी वेटर को बुला कर कुछ कहा और हम लोग थोड़ी देर में एक कमरे में चले गये। कुछ और पी रहे थे कि एक औरत''अच्छी-खासी थी, भरा हुआ जिस्म, उम्र भी ज्यादा नहीं, पता चला उसी होटल की कैबरे-आर्टिस्ट है। थोड़ी देर बाद पता चला प्रोपराइटर साहब तो उठकर चले गये, हम तीनों उस कमरे में रह गये। मेरी तो समझ में ही नहीं आया कि ठहरूं या वापिस जाऊं। मैंने उठते हुए कहा—नारायण हम तो चलते हैं। साले ने, हाथ पकड़कर बैठा लिया। कहने लगा—आप जाएंगे कैसे ? इतनी देर में वह उससे चालू हो चुका था। उससे कहने लगा, यह मेरा करीब-तरीन यार है। वह बातें करती रही। फिर कहने लगा यार, राजू इसे शर्म आ रही है थोड़ी देर के लिए आंखें बन्द कर लो। अब इतनी देर में एक तो शराब और वह सब, मैं खुद ही कैसा-कैसा होने लगा था। थोड़ी देर में आवाज़ आयी, आंखें खोल लो। पता चला साहबज़ादे वीर-गति को प्राप्त हो चुके हैं। मेरे पीछे पड़ गया, मैंने इंकार किया तो कहने लगा लो, हम कमरे के बाहर चले जाते हैं। अब मैं तुम्हें क्या बताऊं शादी से पहले ऐसे बीसियों चक्कर होते रहते थे, मगर यहां पता चला देखते ही देखते हमें अपने मर्द होने पर ही शक होने लगा। नहीं यार, मेहनत करने के सिवा कुछ ही नहीं। और थोड़ी ही देर में आई वाज डिस्गस्टेड। वह लौंडिया अलग हंसने लगी। बाद में शायद उसने नारायण को बताया होगा। वह हरामी चले तो कहने लगे कि अब पता चला तुम्हारी बीवी इतनी लड़ती क्यों रहती है। खैर, इसे तो छोड़ो, मगर मेरी समझ में नहीं आता कि ऐसा हुआ क्यों था ?"

और रात राजू देर तक जागते रहे थे।

छब्बीस

हर आनेवाला महीना मेरे लिए नयी तकलीफ लेकर आता और हर वार वही सब कुछ दोहराना पड़ता—डाक्टर के चक्कर, तरह-तरह की दवाओं की भरमार और विस्तर पर पड़े-पड़े पल-पल की गिनती। अंशु को गए हुए भी चार महीने होने को आ रहे थे और सर्दी अपनी चरम-सीमा पर थी।

राजू दवा की दुकान पर बरावर जा रहे थे और, अब उन्होंने, शुरू में जिस लड़के को नौकर रखा था, उसे भी अलग कर दिया था।

"जीजाजी ने उसे दवाएं चोरी करते पकड़ लिया," राजू ने वताया था—"दवाओं में तो यही है—जरा आंख वची तो नौकर ठिकाने लगा देते हैं।

"यह जीजाजी पता नहीं मुझे नौकर समझने लगे हैं, या क्या है?" एक दिन राजू भन्नाये हुए शाम देर से घर पहुंचे थे। उन दिनों मेरी तवीयत फिर से खराव होना शुरू ही हुई थी—"सुवह मैंने जता-जता कर कह दिया था कि तुम्हारी तवीयत ठीक नहीं है, मुझे शाम को जल्दी घर जाना है, लेकिन यह वक्त कर दिया।"

"हर चीज में टांग अड़ाएंगे।" थोड़ी देर वाद उन्होंने फिर कहा था—"अरे वावा, दिन-भर दुकान पर मैं वैठता हूं, मुझे मालूम है कौन-सी दवा कितनी मंगानी है, क्या नहीं मंगाना—हर वात में [illegible]। और पैसों के वारे में तो यह मालूम होता है जैसे मैं कोई चोर हूं।"

"साले, पैसा लगाते नहीं। यह दवाओं का [illegible] है [illegible] रुपया भी कम है, और इस साले की गिरह से कुछ [illegible] है [illegible] आधे ग्राहक तो खाली हाथ ही वापस जाते हैं, [illegible] होती है।"

इस तरह की वातें धीरे-धीरे [illegible]

जीजाजी पर गुस्सा आने लगा था—

"हमें घर के लिए जो दवाएं चाहिए होती हैं उनके भी पूरे रेट लगते हैं। और फिर साले, मुझे देते क्या हो? तीन सौ रुपया। इस पर भी यह अंदाज़ है।"

इस वार मेरी तवीयत तेज़ टेम्प्रेचर से शुरू होकर टाईफाइड में वदली थी और डाक्टर ने कहा था कि मेरा लीवर खराव हो गया है। वीमारी का फैलाव काफी दिन रहा था और इसमें ज्यादातर समय मुझे अकेले ही काटना पड़ा था। दवाओं को लेकर अलवत्ता कोई तंगी नहीं हुई, और राजू ने अपनी दूकान से ला-लाकर दी थीं। इतने दिनों में ही छोटी-मोटी वीमारियों का इलाज तो वह खुद ही करने लगे थे।

"वचपन में एक ही तमन्ना थी कि डाक्टर वनें।" राजू ने ठण्डी सांस लेकर कहा था।—"पता नहीं क्यों, मगर वह सफेद-सफेद ऐप्रन, हाथ में स्टैथो, चेहरे पर संजीदगी—जो कितावों में पढ़ा था या फिल्मों में देखा था, वड़ा रोव पड़ता था। सोचते थे, एक वड़ा-सा क्लिनिक खोलेंगे। वहुत से डाक्टर, नर्सेज, मरीज़, जिधर से निकल जाओ, लोग कह रहे हैं—यस सर, यस सर। और कान्फ्रेन्सों में लैक्चर देने के लिए वुलाये जा रहे हैं, दुनिया में घूम रहे हैं, वड़े-वड़े लोगों से मिल रहे हैं। यह नतीजा निकला!" कहकर राजू वेचारगी और वेदिली से हंसे।

"यार, तुम्हारी वीमारी तो किसी तरह खत्म ही होने को नहीं आती।" एक दिन दुकान पर जाने से पहले उन्होंने कहा। दिन का खाना कुछ राजू ने खुद वनाया था, कुछ होटल से आया था। मेरे लिए दलिया भी खुद राजू ने ही वनाया था—"देखो, वीमारी का संवंध सोचने से होता है—कुछ कायदे की चीजें सोचना शुरू करो, ऐसा कैसे चलेगा?"

"तुम पता नहीं, क्या-क्या सोचती रहती हो।" अगली वार राजू ने कहा—"अगर हम भी ऐसे सोचने पर ही उतारू हो जायें, तो दो दिन में सलामी का विगुल वज सकता है। अरे ठीक है, जो भी है, इतने सीरियसली लेने से चीजें कम थोड़ी हो जाती हैं।"

और एक खास तरह की लापरवाही राजू के रवैये में आती जा रही थी जो विल्कुल नई थी। यह लापरवाही शारीरिक स्तर की थी और

इसकी शुरुआत ज्योति और अंशु के पूना जाने के फौरन बाद हो गई थी। अस्पताल से वापस होने के बाद मेरी तबियत जरा-जरा ठीक हुई थी और मैं घर ज़्यादा काम खुद अपने हाथों से करने लगी थी—जब उस रात राजू मेरे पास आकर बैठे थे तो—

"दिन-भर जाने किस-किस की मुंह-देखी करनी पड़ती है," उन्होंने सिर पर हाथ फेरकर जम्हाई लेते हुए कहा था—"कभी-कभी तो बेहद कोफ्त होने लगती है। ग्राहक ऐसी बातें करते हैं कि दिल चाहता है सालों का खून कर दो।" कुछ देर वह चुप बैठे रहे थे—"तुम तो ठीक हो ना?"

थोड़ी देर बाद राजू मेरे पास लेट गये।

"लगता है जैसे हम दोनों कुंआरे हैं।" राजू ने मेरा हाथ अपने हाथ में लेकर सहलाते हुए कहा था—"शुरू-शुरू में तो वह सब अस्पताल और तुम्हारी हालत देखकर ऐसा लगता था कि अब कभी भी हिम्मत ही नहीं होगी—मगर इंसान भी क्या चीज़ है। अब लगता है, कुछ हुआ ही नहीं। तुम्हें देखते ही दिल यों-यों होने लगता है, क्यों?"

सब कुछ शुरू हुआ था और मैंने भी उत्साह से हिस्सा लिया था। लेकिन थोड़ी ही देर में मेरा उत्साह खत्म होकर तकलीफ और एक प्रकार के भय में बदल गया था। जब तक राजू साथ रहे बड़ी मुश्किल से मैंने बरदाश्त किया और उनके अलग हटते ही चैन की सांस ली।

राजू जिस ढंग से अलग हुए, मुझे लगा था तबदीली का एहसास उनको भी है, लेकिन फिर भी अपनी बातों से उन्होंने यह नहीं लगने दिया था कि उन्हें बुरा लगा है।

"तुम्हारी शरण में ही आराम है," उन्होंने मेरे [illegible] कुलबुलाते हुए कहा था—"सब मुश्किलें बेमतलब लगने [illegible]

अगली शाम जब राजू मेरे पास आये तो [illegible] उनका साथ नहीं दे पाई थी।

"क्या बात है यार? इतने [illegible] लता के साथ पूछा था।

"मेरी तबीयत ठीक नहीं है" [illegible]

कहा था—"कल की वजह से ही आज दिन भर मैं···चलना फिरना मुश्किल हो गया।"

फिर हर वार यही होने लगा। हर वार चीज़ें एक खास हद तक महसूस करने के वाद मुझे लगता, मैं अन्दर कहीं वदल गई हूं। शरीर के किसी हिस्से में कुछ महसूस करने का माद्दा ही खत्म हो गया है। न सिर्फ यह, थोड़ी ही देर में उलझन, नफरत और गुस्सा। मेरा दिल चाहता था राजू को नोच-खसोट डालूं, डांट कर भगा दूं और फूट-फूटकर रोऊं।

"दिन-भर के थके-हारे शाम के प्लान वनाते घर आओ और यहां तुम्हारा कभी मूड ही नहीं होता। आखिर वात क्या है?" राजू पूछते और कई वार सिर्फ इस ख्याल से कि राजू को वुरा न लगे, मैंने अन्दर से न चाहते हुए भी पूरे समय अपने आप से घृणा करते हुए भी, उनका साथ दिया था, या देने की कोशिश की थी। और हर वार सिवाय एक जिस्मानी थकान के मैं कुछ भी महसूस नहीं कर पाई थी। एक ज़रूरत राजू की समझकर, मैंने हिस्सा लिया लेकिन लगा, राजू भी समझ रहे हैं कि मैं सव ड्यूटी मात्र समझकर कर रही हूं।

मैंने पुराने दिनों को, पुरानी शामों को याद कर करके, उनमें से आज के लिए उत्साह खोजने की कोशिश की थी, लेकिन वह सव कुछ जिसे पहले अकेले में सोचकर ही मैं अपने शरीर में झुरझुरी-सी महसूस करती थी, अव वर्फ की मनों भारी सिलों के नीचे था, जहां से वह नज़र तो आता था, अपनी विगड़ी शक्ल के वाद भी, लेकिन छूकर महसूस नहीं किया जा सकता था। सव वातें, सच्चाइयां, जो मैंने एक-एक रात, एक-एक शाम जानी थीं एकदम वेमतलव होकर रह गई थीं—ऐसी जिन्हें समझा जा सकता था, लेकिन जिया नहीं जाता था।

अव हर वार जव भी मेरी तवीयत खराव होती, इस ओर से एक तरह का इत्मिनान महसूस करके मुझे वड़ा आराम मिलता। वीमारी का यह मौका जैसे मेरे राजू से दूर रहने का वहाना वन जाता था।

"इसका मतलव तो यह हुआ," राजू का दिमाग एकदम दूसरी दिशा में दौड़ने लगता—"कि मुझमें ही कहीं कुछ गड़गड़ है? मुझे भी अव लगने लगा है जैसे वुढ़ापा आ गया। अरे यार, सव कुछ आदमी पर

ही तो डिपेंड करता है।"

और राजू एकदम अपनी सेहत को लेकर बहुत चिंतित होने लगते।

"लगता है मैं भी खंडित होता जा रहा हूं।" वह ठण्डी सांस लेकर कहते। और कभी-कभी मुझ पर बिगड़ पड़ते—"ऐसे कैसे चलेगा?"

अब राजू ने अपना इलाज भी खुद ही करना शुरू कर दिया था। —"ऐलोपैथी में भी कुछ दवाएं तो हैं, लेकिन ये हकीम और वैद्य—इन लोगों का जवाब नहीं। एक जमाने में—खैर तब तो इसकी जरूरत थी नहीं, एक हकीम साहब ने मुझे एक खमीरा बनाकर दिया था। मैं तुम्हें क्या बताऊं, ऐसा लगता था जैसे कुछ भी करो कोई फर्क ही नहीं पड़ता। कभी-कभी तो मैं खुद भी हैरान रह जाता कि यह मैं ही हूं। बहरहाल, अब तो न वह हकीम साब रहे और पता नहीं अब वह दवाएं भी कितनी असली बन रही हैं, लेकिन अपनी दुकान पर भी कुछ दवाएं हैं। मैं कुछ खा रहा हूं, अब देखो।"

"तुम भी डाक्टर से ये बात क्यों नहीं करती?" मुझे भी उन्होंने सलाह दी थी। एक दो बार उन्होंने तरह-तरह की गोलियां खाने के लिए लाकर दी थीं, जो वैसे ही पड़ी रही थीं।

सत्ताईस

"ये दुकान का ऊंट तो किसी करवट बैठता नहीं लगता।" एक दिन राजू साढ़े-पांच बजे ही घर पहुंच गये थे—"रोज यही है—देर से आएंगे। यह काम लग गया था, वह काम लग गया था। काम क्या, हमें नहीं है? आज तो मैं भी शटर-डाऊन करके आ गया। जब आयेंगे तो खुद खोलेंगे बेटा।"

"कहीं से कुछ थोड़ा बहुत पैसा हो जाये तो खुद

किया जाए।" राजू ने एक दिन बहुत देर तक बैठे-बैठे सोचने के बाद कहा था—"इस तरह तो काम चलता नजर नहीं आता।"

"शहर में कैसे काम होगा ? कर्जदार ?"

"यहां नहीं," राजू ने बिना मेरी ओर देखे कहा था—"यहां कैसे कर सकते हैं ? वह तो कहीं बाहर रह कर ही किया जा सकता है। ऐसी कितनी ही सारी चीजें हैं जो छोटे शहरों से ले जाकर अगर बड़ी जगह बेची जायें तो पैसा कमाया जा सकता है। बस कहीं से...!"

मैं राजू की बात समझ रही थी।

पिछले महीनों में मम्मी की चिट्ठियां बराबर आती रही थीं और हर चिठ्ठी में उन्होंने ज़ोर देकर लिखा था कि तुम लोग यहां आ जाओ, वहां अगर कठिनाइयां हैं, तो यहां रहकर राजू कोई काम कर सकते हैं। जबकि मम्मी ने ऐसा साफ-साफ लिखा नहीं था, लेकिन चिट्ठियों ही से अंदाज़ा लगाया जा सकता था कि वह रुपये-पैसे से भी सहायता करने को तैयार हैं।

"पप्पू की वही हालत है" एक चिठ्ठी में मम्मी ने लिखा था—"उस लड़की की शादी तो हो गई है, लेकिन उसका पति अभी अकेला अमरीका गया है, वह यहीं है। हैदराबाद के किसी कॉलिज में एडमिशन ले रखा है। पप्पू को चिट्ठियां भी लिखती रहती है। राम जाने, क्या होना लिखा है।"

अंशु के बारे में भी पता चलता रहता था कि वह ठीक है—"तुमने अंशुल के नाम जो पत्र लिखा था वह ज्योति ने उसे सुना दिया था। अब अंशुल वह पत्र अपने पास रखता है और किसी को हाथ नहीं लगाने देता। तुम लोग अगर जल्दी आ जाओ तो अच्छा है। अंशुल के लिए भी अच्छा रहेगा। इतनी-सी उम्र में ही वह अपने से बड़ा लगने लगा है। न रोता, न जिदें करता, और हमेशा पापा-मम्मी को याद करता रहता है। यह ठीक नहीं है।"

"अगर," मम्मी ने लिखा था—"राजू तुम्हारी बात समझ कर टाल रहे हों तो हम खुद उन्हें चिट्ठी लिखें ?"

चाहे-अनचाहे ही राजू का दिमाग अब पूना की ओर रह-रहकर दौड़ने

लगा था।

"दवाओं की दुकान में तो तुम देख रही हो, अब बोलो तुम्हारी क्या राय है?" उन्होंने पूछा था।

"मेरी राय क्या होगी? आपने शुरू किया था, आप ही जानिए। फिर अभी साल भी तो नहीं हुआ, नौ-दस महीनों में आपको यह अन्दाजा कैसे हो गया कि इस धंधे में कुछ नहीं है?"

"ये कौन कहता है कि इस धंधे में कुछ नहीं है?" राजू ने टू-ब-टू जवाब दिया था—"सब कुछ है, बहुत अच्छा धंधा है, मगर उसके लिए जिसका धंधा है। अव्वल तो दुकान ठीक चलती ही है, कल को और भी ज्यादा चलने लगी तो भी मेरा इसमें क्या फ़ायदा है? जीजा को इतने दिनों में देख लिया, तीन के साढ़े तीन सौ कर देगा तो उससे क्या बात बनेगी?"

"अब अगर आप एकदम अलग होंगे तो गड़बड़ नहीं होगी? आपकी ही जिम्मेदारी पर तो उन्होंने दुकान खरीदी थी?"

"तो क्या बाकी ज़िन्दगी के लिये मैं उनका गुलाम हो गया? मुझे अपना भला नज़र आयेगा तो करूंगा, नहीं छोड़ दूंगा।"

"आप जानो।" मैं एकदम झल्ला गई थी। उस समय तो राजू चुप हो गये थे, मगर मौका मिलते ही उन्होंने फिर से बात निकाली थी।

"तुम तो समझती नहीं हो, वहां दुकान पर मुझे किस-किस तरह ज़लील होना पड़ता है—साला दो कौड़ी का आदमी, धौंस जमाकर चला जाता है। ऊपर से वह आते हैं जीजा, तो उनके दिमाग नहीं मिलते। अपनी चीज़ अपनी होती है। अगर आज जलील होकर मुझे लगे कि कल कुछ फायदा होगा तो चलो मैं हुआ जाता हूं, मगर इस सबका रिजल्ट क्या है? इससे अच्छा कोई रास्ता अगर निकल सकता हो तो हम क्यों न...।"

"मेरी समझ में नहीं आता, दूसरा रास्ता है कौन सा?" मैं फिर झल्ला गई और बात फिर टल गई।

लेकिन राजू रह-रहकर इस प्रसंग को निकालते रहे थे।

"ये भी कोई जिन्दगी है," वह दुहराते—"इससे तो

जानवर कहीं से आकर हमको खा जाये तो शांति मिले। सोचो, बच्चा वहां, हम यहां। अकेले में अगर तुम्हारी तबियत खराब हो जाये तो कोई दो घूंट पानी पिलाने वाला भी नहीं।"

इसी तरह की बातें मेरी बीमारी के बीच भी राजू बराबर दुहराते रहते। उधर जीजाजी से उनके संबंध दिन-ब-दिन खराब ही होते जा रहे थे।

एक दिन राजू को जल्दी घर आना पड़ा, मेरी तबियत की वजह से। उसको लेकर झगड़ा हुआ था।

एक बार मेरी कोई दवा जो दुकान में नहीं थी, बाजार से खरीदने के लिए राजू ने कैश-बाक्स से कुछ पैसे निकाले थे, उसी को लेकर झगड़ा हुआ था।

"साला, ये नहीं देखता कि दुकान में कौन-कौन है, बाहर ग्राहक खड़े हैं, कुछ भी कह देगा। कहने लगा, धंधा कर लो या जोरू की गुलामी। बताओ? और बातें सुन कर आस-पास के दुकानदार भी मुझ पर हंसते हैं। जरा भी देर हो जाये तो आ-आ कर पूछेंगे क्यों साब, आज घर नहीं गये? इतनी देर से पहुंचे तो घर डांट तो नहीं पड़ेगी?"

मुझे मालूम था। यही कि जीजा जी से न निभ पाने का श्रेय ले-देकर मुझे ही जायेगा। मुझे यह भी अंदाज़ा था कि वहां दुकान पर बैठ कर भी राजू लोगों से मेरे बारे में क्या बातें करते होंगे। अस्पताल जाने के लिए दो-तीन बार मैंने रिक्शा में दुकान से राजू को साथ लिया था और आस-पास के लोगों ने जिस तरह मुस्कराते हुए राजू को रिक्शा में बैठते देखा और नीची आवाज में जिस तरह एक-दूसरे से कुछ कहा था वह काफी था। उस पर राजू पर सवार हो आई, थोड़ी-सी घबराहट।

"मैंने तो अब तय कर लिया," राजू ने दृढ़ता के साथ कहा था—"कुछ दिन और देख लेता हूं, उसके बाद चाहे खाने को मिले, चाहे भूखे रहें दुकान रहे या बिक जाये; अगर यही चलता रहा तो मैं दुकान पर नहीं जाऊंगा।"

मैंने कई बार गंभीरता से पूना जाने के बारे में सोचा था और हर बार इस ख्याल को रद्द कर दिया था। क्यों? पूरी तरह तो मुझे खुद

ही नहीं मालूम, और राजू को मैं बिल्कुल नहीं समझा सकती थी। कहीं हमारे भीतर कुछ होता है, जो हमें बिना समझे कुछ चीज़ों को करने की आज्ञा दे देता है, कुछ चीज़ों को करने से रोकता भी है। सूझबूझ के आधार पर हो सकता है, हम इसके विपरीत करने पर मजबूर हो जायें, लेकिन कभी-न-कभी वह हमें गलत जरूर लगता है। इसे किसी दूसरे व्यक्ति को कैसे समझाया जा सकता है?

"आज मैंने कह दिया," रात को राजू हाथ झाड़ते हुए घर पहुंचे थे—"मैंने कह दिया कि दुकान पर मैं एक ही शर्त में बैठ सकता हूं—आपका दुकान में कोई दखल नहीं होगा। जो मुझे अच्छा लगेगा, करूंगा। ज्यादा से ज्यादा महीने के महीने हिसाब देख लो। मैं कुछ भी करूं, कैसे भी करूं, लेकिन आप दुकान पर बैठेंगे भी नहीं। मैंने कह दिया है, सोचकर वह मुझे कल तक बता दें। अगर ऐसा नहीं, तो परसों से मैं दुकान नहीं जाऊंगा।"

अगले दिन राजू दुकान से किसी गहरी सोच में डूबे हुए वापस आए। उन दिनों मेरी तबीयत थोड़ी ठीक ही हुई थी, और अब वैसे भी मेरी बीमारी एक रुटीन-सी बन गई थी। जब मेरी तबियत बिगड़ती, खाना इधर-उधर से कुछ करके किया जाता या राजू को अपने हाथों से काम करना पड़ता। जब मैं ठीक होती तो फिर घर का काम-काज मेरे जिम्मे। काम-काज के नाम पर भी वैसे कुछ करने को नहीं होता था। महीनों से न कोई हमारे यहां आया था, न हम किसी के यहां गये थे।

राजू दुकान से आकर ही चुपचाप बाहर के कमरे में बैठ गये थे।

"सुनो," कुछ देर बाद उन्होंने मुझे सम्बोधित करते हुए कहा—"आज एक आदमी दुकान पर मिला, उसे किराये से मकान चाहिये। अच्छा खासा पढ़ा-लिखा शरीफ आदमी है, गवर्नमेंट सर्विस में।" राजू चुप हो गये थे।

"तो?" थोड़ी देर तक इंतजार करने के बाद मैंने पूछा था।

"क्यों, ये अगर बाहर का हिस्सा हम लोग किराये पर दे दे तो कैसा रहे?" राजू ने सोच-सोचकर पूरी बात धीरे-धीरे कही थी—"वैसे भी अपनी जरूरत से तो मकान काफी ज्यादा ही है, कुछ किराया

ही आयेगा।"

"मैंने बिल्कुल चुपचाप सारी बात सुनी थी।

"इधर, अन्दर से," राजू ने समझाते हुए कहा था—"अगर इस दरवाज़े को बन्द कर दिया जाए तो ये कमरा, अपना नाम का ड्राइंग-रूम बिलकुल अलग हो जायेगा। लेटरीन, बाथरूम, वह बाहर की तरफ जो है, जिसे मम्मी, जीजी के किरायेदार इस्तेमाल करते हैं, वही किया जा सकता है। क्यों, क्या कहती हो?"

"ठीक है," मैंने धीरे से जवाब दिया।

"कल वह आयेगा तो उसे कमरा दिखा देंगे। डेढ़ सौ रुपया किराया। ठीक है ना? अब कल को अगर दुकान पर जाना बन्द हो गया तो खाने-पीने का सिलसिला तो किसी तरह चले। आज उनसे," राजू ने जीजाजी के मकान की तरफ हाथ से इशारा करते हुए कहा था —"आज उनसे बातचीत हुई। उनका कहना है कि छब्बीस हज़ार रुपया तुम मुझे दे दो और दुकान खुद चलाओ। कमीनापन देखा तुमने।"

अट्ठाईस

अगले दिन इतवार था। मकान देखने वाला तो खैर आया नहीं था, सुबह दस बजे जीजाजी ने बच्चे को भेज कर राजू को बुलवाया। राजू थोड़ी देर पहले बाज़ार से लौटे थे, जहां से वह एक फिल्मी रिसाला खरीद लाये थे और इस समय बैठे उसे देख रहे थे।

जीजाजी के यहां जाने के कोई डेढ़ घण्टे बाद मेरे कानों तक आवाज़ें आयी थीं। वैसे अगर मैं यह कहूं कि इस बीच पूरे समय में उधर ही कान लगाये बैठी रही थी तो गलत नहीं होगा। चिल्लाने की आवाज़ राजू की थी। मैं लपक कर घर के दरवाज़े पर पहुंच गयी।

"साला मारता है!" राजू की कांपती-सी आवाज़ सुनायी दी थी।
—"तुम हमारी मां हो। वह मार रहा है और तुम देख रही हो?"
"निकल जा फ़ौरन…" जीजाजी की आवाज़—"हाथ-पैर तोड़ दूंगा…" और किसी ने राजू को धक्का दिया था। जाने क्यों मैं सिमट कर एकदम अन्दर लौट गयी थी।

दरवाजा ज़ोर की आवाज से खुला था और चप्पलों में राजू के तेज-तेज उठते हुए कदमों की आवाज़ सुनायी दी थी।

राजू का मुंह एकदम फक हो रहा था। अन्दर घुसते ही उनके मुंह से गालियों का सैलाब उमड़ पड़ा था।

"यही चाहती थीं ना तुम?" उन्होंने गुस्से में घिर आये आंसुओं के पीछे से मुझे ताकते हुए कहा था और फिर से गालियां उनके मुंह से शुरू हो गयी थीं।

"इतनी गालियां क्यों बक रहे हो?" एकदम गुस्से का एक बगूला मेरे भीतर उठकर हलक में आ अटका था। मेरी आवाज में जरूर कुछ रहा होगा कि एक पल में ही राजू सकपका कर चुप हो गये थे। फिर वहीं कुर्सी पर बैठकर उन्होंने उसकी पुस्त से ठोड़ी टिकायी और उनका सारा शरीर कंपकंपाने लगा था। वह रो रहे थे।

धीरे-धीरे कदम उठाती मैं कुर्सी तक गयी थी और अपना हाथ उनके सिर पर रखा था—जैसे एकदम बिजली का झटका लगा हो। राजू तड़प कर कुर्सी से उठे और अन्दर चले गये। थोड़ी देर मैं उसी जगह खड़ी रही और लगा था जैसे मेरा दिमाग बिलकुल खाली हो। फिर बिना कुछ सोचे समझे, राजू के पीछे-पीछे मैं कमरे में गयी थी। सिसकियां तो मुझे बाहर ही सुनाई दे रही थीं, अन्दर बाकायदा आंसुओं से रोते राजू नजर आये थे।

"उसने साले ने मुझे मारा," जब थोड़ा खुद पर काबू पा लिया तो राजू ने बताया था—"मैंने मम्मी को आवाज़ें दीं और उसने सुनकर अनसुना कर दिया और कल यही मम्मी—इसी ने कहा था कि तुम दुकान में पार्टनरशिप कर लो। जीजी, बच्चे—सब सुनते रहे। कहने लगा—"चौकी में बन्द करा दूंगा।" मैंने कहा ऐसे तो पैदा नहीं हुए. उस

पर उसने मुझे बाकायदा थप्पड़ मारा। अब हम यहां एक पल नहीं रह सकते---अभी इसी वक्त यहां से कहीं चलो। एक दिन अगर यहां रुक गये तो या तो मैं उसका खून कर दूंगा---या आत्म-हत्या। चलो पूना ही चलते हैं, जो होगा देखा जायेगा।"

थोड़ा समय और बीतने के बाद मैंने कहा था---"इस तरह जाने में तो लगेगा तुम डर कर भाग रहे हो। कुछ दिन रुकते हैं, शायद कुछ बात बनें। नहीं तो फिर चले चलेंगे।"

"अब भी बात बनने को कुछ रह गयी है? मैं अब एक सेकण्ड भी इस चार-दीवारी और इन लोगों की शक्लें नहीं देख सकता। तुम आखिर चाहती क्या हो? क्या तुम यह समझ रही हो कि पूना जाकर हम तुम्हारे मां-बाप के सिर रहेंगे? कहीं भी साला कुछ किराये पर ले लेंगे, कुछ करेंगे-धरेंगे, नौकरी करेंगे। कम-से-कम इन कमीनों से तो छुटकारा मिलेगा। ठीक है, तुम्हारे मां-बाप के साथ नहीं रहेंगे। अब तो चलो यहां से। मेहनत करने वालों को कामों की कुछ कमी है!"

जीजाजी से झगड़े की पूरी तफसील न मैंने पूछी थी और न राजू ने बतायी थी।

उनतीस

पूना में अंशुल बहुत शर्माता-शर्माता-सा मेरे पास आया था। वह एकदम बड़ा हो गया था।

मैंने हमेशा यह सोचा था कि मां और बच्चे के बीच जो सम्बन्ध होते हैं, उनमें औलाद का पोर-पोर मां की आंखों के सामने बढ़ता है। मां ही उसकी सारी बदलती शक्लों की गवाह और राजदार होती है। बच्चे का मानसिक विकास और, और उसके भीतर कहीं गढ़ती हुई

"यह सब एकदम हो कैसे गया ?"

मम्मी का सवाल बहुत देर तक मेरे आस-पास गर्दिश करता रहा था। मैं व्याकरण के बारे में सोचने लगी थी। शब्द क्या है, वाक्य क्यों होते हैं ? किस तरह आवाजें शब्द बन जाती हैं, शब्द मिलकर वाक्य और उस सब गड़बड़ में कितना मतलब, कितना अर्थ पैदा हो जाता है। हम जो महसूस करते हैं, कह सकते हैं, जो पूछना चाहें पूछ सकते हैं। समझा सकते हैं ? क्या सचमुच ?

मैं कम-से-कम शब्दों में मम्मी को बतला रही थी कि किस तरह कुछ अनजानी-अनदेखी चीजों के कारण सब गड़बड़ हो गया था। समझ में आने से पहले ही देर हो चुकी थी और ठेकेदारी कितनी रिस्की चीज़ है। एक मिनट में आदमी इस पार या उस पार।

राजू से मम्मी ने अकेले में बातें की थीं। पूना पहुंचने के दूसरे दिन, रात को।

"कुछ कहने से तो ये लगेगा कि मैं अपनी गल्तियां दूसरों के सिर थोपना चाह रहा हूं," मैंने बाहर खड़े-खड़े अन्दर चलर ही बात सुनी थी—"गलती हमारी ही रही। बस, यह था कि शायद इस समय चीज़ों को पूरा समझ नहीं पाये, गलत लोगों पर भरोसा कर लिया और काम भी कुछ ज्यादा दिन ही चल गया। पता चला, हमारा पत्ता ही साफ हो गया। काम था भी ज्यादा-बड़ा। यह सब तो वक्त की बात है। अब मैं जानता हूं, क्या करना है, कैसे करना है। सिर्फ मौके की तलाश है। बस मौका मिले, फिर आपकी समझ में आयेगा कि ठेकेदारी में जो आदमी इस तरह लुटा है, वह कैसे बनेगा ?"

"मुझे अपनी पत्नी, अपने बच्चे के लिए कुछ करना है...." ठण्डी सांस की आवाज—"कब होगा पता नहीं ? लेकिन लगता है, बहुत समय नहीं लगेगा।" पूरी बातचीत के बीच राजू ने अलग रहने वाली बात मम्मी से नहीं दुहरायी थी।

"अभी कुछ दिन तक मैं देखता हूं, सोचता हूं, बम्बई भी जाऊंगा। कोई न कोई जुगाड़ तो लगना चाहिए।"

"तुम देखो, कोई न कोई काम समझ में आये तो हमें भी बताओ।

अब यह है," मम्मी की आवाज भावुक हो आयी थी—"कि हमारा जो कुछ है वह भी किसका है ? तुम्हारा और इन्हीं सब बच्चों का है। तुम कोई पराये तो हो नहीं, जो भी कुछ किसी-भी तरह की जरूरत हो, तुम हम से कह सकते हो।"

"नहीं, नहीं, वह बात नहीं," जैसे राजू आप ही आप झेंप और घबरा गये थे—"देखिए मैं पहले कुछ मालूम तो करूं ?"

"इसमें इतने शर्माने की क्या बात है ?" मम्मी ने फिर समझाते हुए स्वर में कहा था।

"नहीं, ऐसा तो कुछ नहीं," राजू की आवाज।

"मैं ले लूंगा आपसे, जब भी जरूरत होगी। वैसे अभी मेरे पास कुछ पैसा है।" राजू जैसे यूं ही कह गये थे।

"कहां है ?" मम्मी ने विश्वास न करने वाले स्वर में पूछा था।

"यहीं हैं, मैं साथ ही लाया था।" और जैसे राजू ने अपनी जेब से मम्मी को पैसे निकाल कर दिखाये थे—"दो-एक हजार रुपया है। और जरूरत हुई तो आप ही से मांगूंगा। और कहां जाऊंगा ? कुछ दिन की बात है, आप चिन्ता मत कीजिये।"

मुझे जैसे सांप सूंघ गया। जैसे-तैसे करके मैं अपने कमरे में लौट आई थी। एक पलंग जिसकी चादर पर शिकनें पड़ी हुई थीं, जहां अंशु सो रहा था और चारों तरफ अस्त-व्यस्त-सा हमारा सामान—जैसे हम सफर में कहीं कुछ देर के लिये रुके हों। मैंने चीजें करीने से जमानी शुरू कर दीं। कपड़े हैंगर्स पर, छोटी-मोटी चीजें अलमारियों में जहां जो चीज मुनासिब लगी।

"पूना तक किराये का क्या करोगे ?" मैंने घर पर सामान करते हुए पूछा था।

"ये बात तो है।" राजू जैसे एकदम सोच में पड़ थक कर वहीं होल्डॉल पर बैठकर पहले कुछ देर सोचते कहा था—"खैर उसकी फिक्र छोड़ो, कहीं से करेंगे

घर से दो घण्टे गायब रहने के बाद राजू ने बताया था कि पैसों का इन्तजाम हो गया

जिसके यहां से राजू पहले सिगरेट खरीदते थे, उससे सौ रुपया उधार मांग कर लाये हैं। पूना के लिए चलते समय हमारी सारी पूंजी यही सौ रुपये थी फिर वह दो हज़ार...?

राजू कमरे में आये और सिगरेट जला कर लेट गये।

"पूना आते ही तुम्हारी तबियत संभली-संभली-सी लगती है क्यों?"

"कोई ऐसी खास तो नहीं," मैंने सामान रखते हुए जवाब दिया —"हो सकता है कुछ दिनों में अन्तर पड़े।"

"नहीं, बिल्कुल नहीं," रात को जब राजू ने मेरे करीब आने की कोशिश की तो मैंने खुद को अलग करते हुए कहा था—"मैं यह नहीं चाहती कि यहां भी कल से डाक्टरों के चक्कर लगाना शुरू कर दूं।"

तीस

पूना रहने के कुछ दिनों में पप्पू-जमीला को लेकर नयी घटनाएं घटी थीं। यह हुआ था कि जमीला हैदराबाद से भाग कर पूना आई थी, फिर वह और पप्पू इकठ्ठे पूना से कहीं जाना चाह रहे थे—कुछ दिनों के लिए किसी ऐसी जगह जहां कोई उन तक न पहुंच पाए।

तुम ऐसा क्यों नहीं करते कि वहां जाकर हमारे यहां रहो? मैं तुम्हें अपने दोस्तों के पते दिये देता हूं जो तुम्हारी मदद करेंगे। वैसे भी वहां तुम लोगों का कोई कुछ नहीं बिगाड़ सकता। वहां अपना मकान भी खाली पड़ा है!" राजू ने सलाह दी जो पप्पू के भी समझ में आ गई और वह दोनों पूना से हमारे घर चले गए।

इस घटना से एक वक्ती उफान-सा पैदा हुआ था, जो धीरे-धीरे

समय बीतने के साथ कम होता गया था। जमीला का पहला पति आया, पुलिस आई, लोगों ने एक दूसरे से बदले लेने की कसमें खाई और फिर धीरे-धीरे सब शांत होने लगा था। जमीला का पति दो-चार महीने रह कर वापस अमरीका चला गया और सिवाय एक दुश्मनी के और सब खत्म हो गये थे। बस, जमीला के घरवालों का और हमारा एक-दूसरे के यहां जाना-आना बन्द हो गया था।

"हम लोगों ने शादी कर ली। कोर्ट मैरिज नहीं हो सकती थी क्योंकि जमीला की पहली शादी से डायवोर्स नहीं है। जमीला का नाम निवेदिता है। मुझे यहां एक जगह नौकरी मिल गई है। बाकी सब ठीक है।" पप्पू की एक चिट्ठी थी।

फिर ज्योति कुछ दिनों के लिए पप्पू के पास गई थी, मम्मी के कहने पर, और वापस आकर उसने बताया था कि पप्पू और जमीला, अब निवेदति, हंसी-खुशी रह रहे हैं।

"उसे देखकर लगता ही नहीं कि वह जमीला है। सूरत-शक्ल में तो वैसे भी क्या अन्तर होता है, मगर सिंदूर, मंगल-सूत्र, टिक्की—ऐसा लगता है जैसे यही सब करने का सोचते हुए वह बढ़ी हो।" ज्योति ने अपने खास अप्रभावित रहने वाले अन्दाज़ में बताया था। लेकिन मुझे लगा था वह भी कुछ प्रभावित थी—"और पप्पू तो जैसे हैं, न कभी पूजा न पाठ, वह उसे भी ठीक किये दे रही है।"

"पप्पू को क्या नौकरी मिली है?" मैंने अकेले में ज्योति से पूछा था।

"कुछ चिटफण्ड स्कीम है किसी की, वहां जाता है।"

यह तो मुझे मालूम ही था कि मम्मी भी बराबर पप्पू को पैसे भेजती रहती हैं।

"निवेदिता का भी नौकरी का चल रहा है।" ज्योति ने बताया था।

देखते ही देखते निवेदिता घर वालों की नज़रों में जैसे एक हीरोइन बन गई थी।"

"पहले तो मैं समझता था, कहीं कुछ घपला है..." राजू ने कहा था और बहुत ही उदारभाव के साथ इसके आगे जोड़ा था—"मगर इस लड़की ने तो मेरी आंखें खोल दीं, वाह-वाह।"

"आपका ख्याल है, यह सब बहुत दिनों तक चल पायेगा ?" मैंने कोशिश करते हुए कि मेरी आवाज से कोई भाव व्यक्त न हो, राजू से पूछा था।

"क्यों नहीं ?" राजू ने इस तरह मेरी ओर देखा जैसे मैंने कोई पागलपने की बात कह दी हो—"क्यों नहीं चलेंगे ? पहले तो···पप्पू को उससे अच्छी लड़की कौन-सी मिल सकती थी ? दूसरे, वह अब लौट-कर जाएगी कहां ? मां-बाप के यहां ? या अपने पहले पति के पास अमरीका ? उसने तो वह हिम्मत का काम किया है···!"

"जो इतनी हिम्मत कर सकती है कि मां-बाप, भाई-बहन, धर्म सब कुछ छोड़ दे, क्या कल समय पड़ने पर इतनी हिम्मत नहीं कर सकती कि एक आदमी से अपने सम्बन्ध तोड़ ले ?"

"तुम कहना क्या चाहती हो ऐं ?" राजू ने हैरानी से मेरी ओर देखते हुए कहा था—"तोड़ना चाहती है, तोड़ ले, इसमें नाराज़ होने की क्या बात है ?"

"नाराज़ कौन हो रहा है ?"

मुझे यही लगता है कि आज नहीं तो कल पप्पू और जमीला को अलग होना है। एक भावावेग में बहकर किया गया फैसला तभी तक रह सकता था जब तक कि उसका विरोध हो। एक चैलेंज समझ कर कुछ देर तो उसे जिया जा सकता था; लेकिन कल और परसों में जीवन जब रोजमर्रा की छोटी इकाइयों में बंट कर नीरस औरएकदम मामूली हो जायेगा, उस समय क्या होगा ? उस समय क्या ये हिम्मत, ये बागीपन का फैसला निरर्थक और मूर्खतापूर्ण नहीं लगेगा ?

पूरे घर वालों में जमीला के प्रति जो भक्तिभाव-सा जागृत हुआ था, मुझे लगता था केवल कुछ दिनों का है। कुछ ही दिनों में ऐसा कुछ हो जायेगा जिससे इनका, जमीला में जो विश्वास है, वह खत्म हो जाये और उस स्थिति में फिर ? न इधर न उधर। पप्पू को भी जानती हूं, वह घर वालों की कितनी परवाह करता है। कल अगर उसे ऐसा लगा कि उसके घर वालों की नजरों में जमीला दूसरों से कम है तो वह भी घर वालों के साथ होगा। मूर्ख लड़की। मेरा मन ज़मीला के लिए दया-

भाव से भर जाता। मुझे लगता केवल मैं थी, जिसे जमीला से हमदर्दी थी।

"उसे किसी हमदर्दी की जरूरत नहीं।" ज्योति ने कहा था—"वह इतनी कमज़ोर नहीं है, सबको ठीक कर लेगी।"

इकत्तीस

राजू की जिन्दगी, पूना में, या तो घर के बाहर या फिर घर पर हमारे अपने कमरे के भीतर ही सीमित होकर रह गई थी। रोज़ सुबह उठने के बाद—"यार यहीं ला दो चाय," या "ठीक है, मैं रास्ते में कहीं पी लूंगा," कहकर राजू घर से निकल जाते। उनकी वापसी ज़्यादातार शाम को देर से होती और दोपहर का खाना वह बाहर ही कहीं खाते।

अब इस समय वापसी पर वह कहते—"वहां कहां किचिन में जाओगी? खटर-पटर की आवाज़ सुनकर लोग जाग जाएंगे।"

राजू अगर खाना खाने पर राज़ी भी होते तो कमरे के भीतर ही। घर में कोई भी आये जाये, राजू कोशिश यही करते कि उनका सामना न हो पाये।

"क्या रखा है इस ऊपरी दिखावे में?" मेरे ऐतराज़ करने पर उन्होंने कहा था—"कहेंगे, अच्छा आप हैं। और सब ठीक है? मैं कहूंगा, जी हां, सब मेहरबानी है, और आप कैसे हैं? बताओ क्या रखा है? मुझे क्या लेना उनके अच्छे होने से और उन्हें मुझसे क्या? पता चला जबरन मुहब्बत जताने के लिए मरे जा रहे हैं।"

और तो और मम्मी और दूसरे घर वालों से भी राजू का मिलना बहुत कम ही हो गया था। ज़्यादा से ज़्यादा कभी ज्योति कमरे में आ जाती, या कभी-कभी पद्मा। पद्मा को लेकर मुझे हमेशा लगा जैसे राजू

एकदम सचेत हो जाते हैं। उसके आसपास होते ही राजू एकदम बेचैन से हो जाते और खिसियाने अंदाज़ में कनखियों से मेरी ओर देखने लगते।

"ये पद्मा को देखकर आप इतने घबरा क्यों जाते हैं?" मैंने पूछ ही लिया था।

"कौन ? मैं ? नहीं तो !" राजू एकदम और भी कांशस हो गये थे और उस समय वह बात टाल गये थे। बाद में किसी समय उन्होंने खुद ही मुझसे कहा था—"यह पद्मा तुमसे कितनी मिलती है।"

"अच्छा ?" मेरा अंदाज़ शायद व्यंग्यात्मक रहा होगा।

"नहीं, बाई गॉड़, मैं मजाक नहीं कर रहा। तुमने उस दिन पूछा भी था, शायद यही वजह होगी मेरे उसके साथ हिचकिचाने में। नहीं तो और सब भी तो हैं, और किसी के साथ तो मुझे ऐसा नहीं लगता।"

"आप पहले आदमी हैं जिसका यह ख्याल है।" न चाहते हुए भी कड़वाहट मेरे स्वर में आ गयी थी।

कोई एक महीने के बाद मैंने राजू से पूछा था—

"कोई काम समझ में आया ?"

"क्यों ?"

"कुछ नहीं ऐसे ही पूछा।"

"जी नहीं, साफ-साफ कहिए।" एक पल को राजू की आंखों में वही पागलपने की चमक दौड़ गई थी।—"साफ-साफ कहो ना, कि तुम्हारे मां-बाप का खा रहा हूं। ऐसे कितने दिन चलेगा ? दिल में रखने की बिलकुल ज़रूरत नहीं। और हमें तो वैसे भी नज़र आ रहा है। तुम्हारे घरवालों का बदला हुआ रंग, क्या हम समझते नहीं ? इसीलिए हम खुद यही कोशिश करते हैं कि ज्यादा से ज्यादा समय बाहर गुजरे।"

"आपस की बात में मां-बाप को घसीटने की क्या जरूरत है।" मैंने गुस्से में कहा था।

"तो और किसे घसीटूं ?" राजू की गुस्से में घुटी-घुटी-सी आवाज़ निकली थी—"कभी आज तक किसी ने पूछा है, कहां जाते हो ? क्या करते हो ? खाना घर पर नहीं खाते तो क्या भूखे मरते हो ? पैसे ले लेना ! तो क्या अब झोली डाल कर उनसे भीख मांगूं ! ऊपर से यह

जैसे दुगने घनिष्ट हो गये थे।

दो-ढ़ाई बजे रात को राजू घर लौटे थे और उस समय उन्होंने शराब पी रखी थी। हम दोनों अलग-अलग सोये थे।

"इतने रात गये तक आप यहां घर से वाहर नहीं रह सकते।" अगली सुवह जब राजू घर से निकलने के लिये जूते कस रहे थे, मैंने एक-एक शब्द पर जोर देकर कहा था—"न शराव पीकर घर आ सकते हैं। अगर किसी के यहां रहना है तो उसकी मर्जी का ख्याल भी रखना पड़ेगा।"

थोड़ी देर के लिये राजू ने मुझे घूर कर देखा था, और बिना एक शब्द कहे घर से निकल गये थे।

उस शाम वह घर नहीं लौटे थे। मम्मी से मैंने यह वहाना कर दिया था कि अपने किसी काम से वह वम्बई गये हैं।

अगले दिन भी राजू नहीं आये थे।

तीसरी दोपहर को जब मैं मम्मी के साथ ड्राइंग रूम में कुछ वाहर से आये लोगों के साथ बैठी वातें कर रही थी, ज्योति ने धीरे-से मेरे कान में आकर कहा था कि राजू आ गये हैं। मैं वहीं बैठी वातें करती रही थी।

ज्योति ने जिस अंदाज़ से आकर मुझे वताया था। हो सकता है मैं इन दिनों हाइपर-सेंसिटिव हो गई होऊं—लेकिन मुझे लगता था जैसे सारे घर वाले मेरे और राजू के संबंधों को देख, मुंह छिपा-छिपा कर हंसते हैं।

मैं कमरे में नहीं गई थी, अंशुल को लेकर पड़ोस में किसी के पास बैठने चली गई थी। हां, ज्योति ने जाकर ज़रूर राजू से खाने के लिये पूछा था और उन्होंने इंकार कर दिया था।

रात के दस वजे तक मैंने खुद को इधर-उधर के कामों में लगाये रखा था। बच्चे पढ़ रहे थे उनकी मदद करती रही। एक वार किताव उठाने अंशु जरूर कमरे में गया था और वहां से आकर उसने कहा था कि डैडी बुला रहे हैं, लेकिन मैं अनसुना कर गई थी। जब दस वजे मैं कमरे में गयी तो राजू ऐसे लेटे हुए थे जैसे सो गये हों। मैंने चुपचाप वत्तियां बुझाईं और अंशुल को लेकर लेट गई थी।

बत्तीस

अगली सुबह नयी तरह शुरू हुई थी। पिछले तीन दिनों की बात न राजू ने निकाली थी, न मैंने की थी।

"सुनो, अगर मम्मी वह पैसा दे दें तो एक काम है," सुबह मेरे बिस्तर से उठते ही उन्होंने कहा था—"ठीक लगता है, उसे शुरू किये देते हैं।"

मैंने मम्मी से कहा था कि राजू कोई काम शुरू करना चाहते हैं और उसके लिये उन्हें पैसों की जरूरत है। मम्मी ने राजू को बुलाया और देखते ही देखते पांच हजार रुपये का चैक साइन करके मम्मी ने राजू के हवाले कर दिया था।

"मैं ज्यादा से ज्यादा चार-पांच महीनों में पैसा वापस करने की कोशिश करूंगा।" राजू ने भाव में डूबी आवाज में कहा था—"मैं किस तरह आपका•••।"

"पागलपने की बात नहीं करते।" मम्मी ने राजू के सिर पर हाथ फेरते हुए कहा था—"ये सब है किस लिए? आज था तो तुम्हारे ही काम आया। रहेगा तो तुम लोगों का ही है। मगर सब सोच समझ कर करने का है। पिछली गलतियों से अगर कुछ सीखा•••।"

बहरहाल, राजू का काम शुरू हो गया था।

"अपने शहर में लकड़ी का फर्नीचर्स बहुत सस्ता बनता है। वहां मेरे जान-पहचान के कारीगर भी हैं, मैं वहां से छोटी-मोटी चीजें बनवाकर यहां बम्बई में लाकर बेचा करूंगा। लोगों से बातचीत भी हो गयी है जो खरीदा करेंगे। जो चीज वहां दो-ढाई रुपये की है, यहां पन्द्रह-बीस रुपये में लोग हंस के खरीदेंगे।"

राजू का आना-जाना शुरू हो गया था। चन्द्रशेखर इस धंधे में उनके साथ था।

"उसी के जरिए माल यहां बिकेगा," राजू ने बताया था।

राजू का ज्यादा समय बम्बई में ही बीतने लगा था। वह पूना आते जाते रहते और बम्बई में चन्द्रशेखर के अंकल के यहां उनका पड़ा रहता।

"बेचारे बहुत ख्याल रखते हैं।" वह अक्सर दुहराते—"किसी वक्त पहुंच जाओ खाना-पीना, हर चीज़ का ख्याल।"

"पप्पू के तो ठाठ हैं," पहली बार जब राजू घर से वापस आये तो उन्होंने बताया था—"और उस औरत की तो पूजा करनी चाहिए कितना ख्याल रखती है उसका। पप्पू कह दें दिन तो उसके लिए कभी रात हुई ही नहीं। वह कह दें रात, वो दिन में भी वह आसमा सितारे गिन के बता सकती है! दोनों कमा रहे हैं और बेहद खुश हैं।"

राजू ने काम शुरू करने के दो महीने बाद मुझसे कुछ और पैसों लिए कहा था—"इकट्ठा माल लाने में ही फायदा है।" उन्होंने बता था—"और माल लाने बिकने और पेमेंट होने में भी तो समय लगता है अगर दो हज़ार रुपया और हो जाये तो सिलसिला बन जायेगा। आ रहेगा और बिकता रहेगा, पेमेंट होता रहेगा।"

मैंने जब मम्मी से दोबारा पैसों की बात कही थी तो उन्होंने बता था कि न उनके पास पैसा था और न अभी कुछ दिन कहीं से मिलने आशा थी—"तुम्हारे बाबा," उन्होंने कहा था—"कुछ दिनों में बम जाकर कुछ और जमीन बेचना चाह रहे हैं। तब तक कुछ हो सके।"

राजू यह सुन कर बहुत भनभनाये थे—"ज़रूरत आज है, एक मह बाद मिलेगा तो मेरे किस काम का?"

और इस बीच राजू के दोस्तों का दायरा बढ़ता गया था। न ज किन-किन लोगों के साथ वह घूमते-फिरते-और रात देर से आते। पू पर काम के छत्तीस झगड़े वह मुझे समझाते। इससे मिलना पड़ा, वहां जा पड़ा, यह हो गया आदि। मेरे उनकी किसी बात को झूठ साबित कर पर भी वह कहते—"अच्छा ठीक है! हम झूठ बोल रहे हैं। ठीक है, जै समझो।" और अपने किसी काम में लग जाते।—"रोज़-रोज़ का रोना तुम तो यह चाहती हो कि मैं चूड़ियां पहन कर घर में बैठ जाऊं, तो

ने मुझे बताया था—"कह रही थी दीदी को पता नहीं उनसे क्यों नहीं बनती ? इतने भले और समझदार आदमी हैं।"

मैं ज्योति के सामने ही नाराज़ होने लगी थी कि कीड़े तो सचमुच मुझ में हैं। राजू को इतने सालों में मैं थोड़ी समझ सकती हूं। उसके लिए मुझे पद्मा की राय की ज़रूरत नहीं है। और संबंध बनाये रखने की कोशिश मैंने ही नहीं की है। सब इस कारण है कि पद्मा को राजू अच्छे लगते हैं।

पद्मा से मनमुटाव पैदा होने से पहले ही मैंने उसे समझा कर—कहा था कि दो लोगों के बीच में, जो पति-पत्नी हों, किसी प्रकार की एक दो बातों से पूरे संबंधों का अंदाज़ नहीं लगाया जा सकता।

"क्या मैं तुम्हें इतनी मूर्ख लगती हूं कि राजू को न समझ कर उनके साथ कोई ज्यादती करूं ?"

इसके बाद से पद्मा जान कर राजू को और जाने क्यों, राजू भी पद्मा से कतराने लगे थे।

अगला सत्र शुरू होने पर, मम्मी के कहने से मैंने कॉलिज में एडमिशन ले लिया था। अंशु भी पद्मा के साथ, जहां वह पढ़ाती थी उसी स्कूल में जाने लगा था और राजू अपने फर्नीचर के काम में लगे ही हुए थे। मेरे कालिज में एडमिशन का सुनकर राजू ने केवल "ठीक है' कहा और वह जहां उस समय जा रहे थे, चले गये।

पूना आये हमें आठ महीने बीत चुके थे।

तेतीस

अन्दर हो रही बातचीत सुनकर ही मुझे यह अंदाजा हो गया था कि बात बढ़ गई है।

"हम तो समझते थे तुम अपने लिए नहीं तो अपनी पत्नी और बच्चे के लिए ही कुछ करना चाहते हो।" मम्मी की गुस्से भरी आवाज़ थी—"यही सोचा था कि हो गया होगा नुकसान ! अब हमें विश्वास है तुम कुछ कर ही नहीं सकते।"

"आपके विश्वास से क्या होता है? आप मेरी किसी बात पर यक़ीन करें तब ना। आप तो समझती हैं, मैं आपके पैसों का भूखा और आप लोगों का दुश्मन हूं। मिलते समय तो मुझे मालूम भी नहीं था कि वह लोग हैं कौन ?"

"हां, हो तो तुम बहुत भोले।" मम्मी ने व्यंगात्मक अंदाज़ में जोड़ा था, और राजू फिर से मम्मी को समझाने के अंदाज़ में बात को उठा रहे थे, और कुछ कह रहे थे।

असल में पिछले तीन महीने में सारी बातें इस तरह जुड़ती-जुड़ती सामने आई थीं जैसे बच्चों के खेलने के प्लास्टिक के छोटे-छोटे टुकड़े मिलकर एक तस्वीर बना देते हैं। कुल मिलाकर जो तस्वीर बनी थी वह सिर्फ मेरे ही नहीं पूना में सारे घर वालों के सामने थी। मम्मी से लिए हुए पैसों का अंजाम, बम्बई में मम्मी के सौतेले लड़के सुरेश से राजू के संबंध, घर से दिनों गायब रहना, बहुत देर से रातों को लौटना, [illegible] से दोस्ती और न जाने कितने ही छोटे-छोटे प्रसंग थे जिन्होंने [illegible] राजू को घर वालों की आंखों में एक शक्ल दी थी।

पिछले कितने ही दिनों से राजू न फर्नीचर [illegible] बेचने बम्बई। ज़्यादातर समय उनका पूना में ही [illegible] शेखर और उसके कुछ और दूसरे दोस्तों के [illegible] घर में बातचीत करना ही बन्द [illegible] बम्बई से लौटते थे उनका पूरा [illegible]

"क्या शहर है !" वह [illegible] लेकर आये, आज करोड़ों [illegible] दार के लिए बनने के [illegible] सिर्फ थोड़ा [illegible] छोड़ के—[illegible]

लगता है कि वह छोटा होता जा रहा है। मुझे ऐसा बिलकुल नहीं लगता। ऊंची-ऊंची विल्डिगों को देखकर मुझे लगता है मेरे हाथ में रस्सी का एक बड़ा फन्दा है। जितनी ऊंची विल्डिग पर भी मैं चाहूं, उसे फेंक सकता हूं। अच्छा किया, हमने जो यहां चले आये, वहां रहकर बरबादी के अलावा और क्या था ?"

वहरहाल, अब मम्मी के दो-एक बार बात निकालने पर भी राजू ने यही कहा था कि जी हां ठीक है, चल रहा है। ज़रा यह दिक्कत आ गई थी, तो वह हो गया था। पूना में रहते हुए राजू ने खर्चे के लिए मुझे तक पैसे नहीं दिये थे और मेरे मम्मी के दिये हुए जेब-खर्चे में से भी पिछले दिनों उन्होंने कई बार एक-एक दो-दो रुपये करके लिए थे। उनके खर्चे को देखकर इन दिनों यही अंदाज़ होता था कि उनके पास पैसे नहीं हैं।

लेकिन मम्मी की नज़रों में राजू का सबसे बड़ा अपराध सुरेश से संबंध स्थापित करना ही नहीं बल्कि यह था कि राजू ने उससे मेरी, घर वालों की, मम्मी की, बाबा की बेगिनती बुराइयां की थीं। पिछली बार जब मम्मी, बाबा के साथ बम्बई गई थी तो सुरेश ने राजू की वकालत करते हुए कहा था कि हम ही अकेले थोड़ी हैं। ज़रा, बाबा की आंखें मुंदने दो, फिर देखना हमला करने वालों में सबसे आगे तुम्हारा अपना दामाद राजू भी होगा। तुमने उसे लड़की दी है या चन्द पैसे फेंक कर मोल खरीदा है ?

"मगर राजू यह सब उससे कह कैसे सकते हैं ?" मम्मी जब बम्बई से लौटीं तो बेहद नाराज़ थीं। जाने कितनी बार तो यह सवाल उन्होंने अपने आप हो दुहराया था और फिर उस दिन राजू को लेकर पूछने बैठी थीं।

राजू चुप बैठे ज़मीन की ओर देखते रहे थे और कोई जवाब नहीं दिया था। मम्मी गुस्से में जाने क्या-क्या कहती रही थीं कि—"तुम्हें क्या समझा, तुम्हारे साथ ये किया, इसका बदला तुमने दिया !" और राजू सब सिर झुकाये सुनते रहे थे।

"अभी अगर यह बात इनके बाबा को मालूम हो जाये, तब पता

चले तुम्हें···" मम्मी ने जैसे बात को खत्म करते हुए कहा था।

"क्या पता चले ?" राजू एकदम भन्ना कर खड़े हो गये थे—"क्या मेरी खाल खिचवा देंगे ? मैं अगर आपका ख्याल करके कुछ नहीं कह रहा तो इसका ये मतलब है कि आप जो जी चाहे कह लें ? मेरे मुंह में भी जबान है, मेरे पास भी बातों के जवाब हैं। वह क्या करेंगे ? मैं खुद ही ऐसी जिल्लत की जगह नहीं रहूंगा। जरा-सी बात का जाने क्या-क्या मतलब उठा लिया गया।" और गुस्से से पैर पटकते राजू मम्मी के पास से उठकर कमरे में चले गये और दिन-भर वहीं बन्द रहे।

बस, उसी दिन से राजू और मम्मी के बीच बातचीत बन्द हो गई थी।

"मैंने कुछ कहा हो तब ना।" राजू ने बाद में मुझसे कहा था—"जबान से एक शब्द भी निकला हो। सुनो, मैं वहां बम्बई जाता हूं और चन्द्रशेखर के साथ उसके अंकल के यहां ठहरता हूं। उसने मुझे मिलवाया सुरेश से, और तब तो मुझे मालूम भी नहीं था कि वह तुम्हारा सौतेला भाई है—या जो भी है। तुम लोगों के बारे में, बाईगॉड, जो मैंने कुछ भी कहा हो। वह खुद सब जानता है और चन्द्रशेखर उसे बताता रहता है। मैं मुश्किल से तीन-चार बार तो उससे मिला हूं, वह भी चलते-चलते। और, तुम खुद सोचो इतनी देर में मैंने उससे इतनी बातें कर लीं। ये मम्मी नहीं, उनका पांच हजार रुपया बोल रहा है। और मुझे तो पहले ही अंदाजा था। अच्छा हुआ इसी स्टेज पर बात साफ हो गई।"

"आप ये अच्छी तरह जानते हैं कि मम्मी को आपका चन्द्रशेखर से मिलना भी पसंद नहीं।" मैंने राजू की बात सुनने के बाद कहा था।

"मम्मी कौन होती हैं मेरी दोस्तियों का फैसला करने वाली ?" राजू फिर भड़क उठे थे—"और तुम उनकी सी नहीं कहोगी तो क्या मेरा साथ दोगी ? अस्पताल का जनरल वार्ड इस घर से अच्छा होगा, वहां आस-पास लोग तो होते हैं। यहां पता चला, सारे घर वाले इकट्ठे हैं—हमें आता देख कर बातचीत के टॉपिक बदल दिये जाते हैं। पड़ो कमरे में अकेले पड़े रहो, न कोई खाने को पूछेगा, न दवा को। ठीक है भाई-बहन, मां-बाप, हम तो हैं ही घुसपैठिये।"

"घर वालों से अलग आप रहते हैं या वो लोग आप से ?" मैं क
बिना न रह पाई थी—"कभी बैठक के कमरे में आप गये हैं ? कभ
किसी से बातचीत की है ? किसी से घुलने-मिलने पर ज़रा भी राज
नज़र आये हैं आप ? आपका संसार तो वही चन्द्रशेखर और दोस्त हैं
फिर अपनी उम्मीद भी उन्हीं से बांधिए, घरवालों से क्यों गिला करत
हैं ?"

"मिलें जब, सामने वाला मिलना चाह रहा हो ! तुम्हारे घर वाल
मेरी परवाह ही कितनी करते हैं ।" जाने क्यों, उस समय राजू इतन
ही कह कर चुप हो गये थे । और तो और अगली सुबह राजू ने मम्मी स
स्पष्ट शब्दों में माफी भी मांगी थी और खुश करने की कोशिश भी क
थी—मगर बात बनी नहीं थी । मम्मी ने सब कुछ सुनकर अनसुना क
दिया था और राजू की किसी बात का जवाब नहीं दिया था ।

दो-चार दिनों में कहीं से राजू ने दो हज़ार रुपये इकट्ठे किये थ
और मम्मी के सामने ले जाकर पटक दिये थे—"अभी इतने ही हैं ।"
उन्होंने चलते-चलते कहा था—"बाकी का माल बम्बई में दुकानों प
पड़ा है, विश्वास न हो तो किसी को भिजवा कर दिखवा लीजिये ।"

इसके बाद राजू ने वह सब कुछ हरकतें की थीं जिनसे मुझे ही नहीं
घर वालों को भी तकलीफ और परेशानी पहुंचाई जा सके । वह दो-द
तीन-तीन दिन रात घर से गायब रहते । कभी चार-चार बजे रात क
घर लौटते । हद ये कि मुझसे भी उनकी दो-शब्दों में ही बात होने लग
थी ।

चौंतीस

फिर उस दिन राजू ने अंशुल को मारा था ।

दिन के दो बजे का समय था और मैं बाथरूम में कपड़े धो रही थी—अंशुल को मैं कमरे में लिखता छोड़कर आयी थी। राजू रात-भर गायब रहने के बाद उसी समय लौटे थे और सीधे कमरे में चले गये थे। मेरा उनसे आमना-सामना भी नहीं हुआ था। एकदम अंशुल के रोने की आवाज़ मेरे कानों तक पहुंची थी और कपड़े मसलते मेरे हाथ रुक गये थे। अंशुल की चीखें थमी नहीं थीं, हर पल तेज़ होती गयी थीं।

एकदम पूरे घर में सन्नाटा हो गया था—जैसे सारा घर अंशुल की आवाज़ सुनने लगा हो।

मैंने हाथ का कपड़ा छोड़ा था, मगर किसी चीज़ ने मुझे उठने से मना किया था और मैं फिर बैठी रह गयी थी। अन्दर से राजू के डांटने और चिल्लाने की आवाजें आ रही थीं और अंशुल की चीखें। मैं उठते-उठते बैठी थी और फिर एकदम बिजली की तेजी से उठकर लपकती हुई कमरे तक पहुंच गयी थी।

अन्दर राजू ने एक हाथ से कस कर अंशुल का कान उमेठ रखा था और दूसरे हाथ से उसके गालों पर, उसके माथे पर, मुंह पर तमाचे लगा रहे थे।—"अब करेगा? बोल...बोल..." अंशुल दहाड़ें मार-मार कर रो रहा था।

मैंने लपक कर राजू के हाथ पकड़े थे और उसके बाद मुझे नहीं मालूम कैसे सब हो गया। थोड़ी देर में मुझे लगा मैं राजू से भिड़ी हुई थी। मेरे हाथ पैरों में जाने इस समय इतना बल कहां से आ गया था। राजू का सीना मेरे नाखूनों से जख्मी हो गया था, उनकी कमीज फट गयी थी और होठों में से खून निकल आया था।

"गेट आउट।" मैंने उन्हें धक्का देकर अपनी पूरी ताकत से चिल्लाते हुए कहा था—"यहां से निकल जाओ।"

थोड़ी देर बाद कमरे में पूरा घर जमा हो गया था। लोग पता नहीं, क्या-क्या कह रहे थे। मैं कुछ नहीं सुन पायी थी। रोते अंशुल को उठाकर मैं वहीं मसहरी पर बैठ गयी थी।

चार दिन बीत गये थे। राजू घर नहीं लौटे थे। पांचवें दिन मुझे एक खत मिला था—लिफाफे पर लिखी हैंड-राइटिंग राजू की थी।

अन्दर दो लाइनों में राजू ने लिखा था कि अगले दिन शाम को मैं उनके दिये हुए पते पर मिलूं। दो दिन बाद एक और खत आया था जिसमें राजू ने बीती जिन्दगी के हवाले देकर मुझसे माफी मांगी थी—"अगर तुम मुझ से नहीं मिली," उन्होंने लिखा था—"तो मेरे सामने एक ही रास्ता है—आत्म-हत्या। जो कुछ हुआ, एक बार और मेरी खातिर उसे भुला दो। तुम अगर साथ हो तो मैं अब भी बिलकुल मरा नहीं हूं, मैं कुछ-न-कुछ कर दिखाऊंगा। इतनी बार कह चुका हूं, लेकिन विश्वास रखो, अब कुछ-न-कुछ कर दिखाऊंगा।"

पत्र में अंशुल को लेकर राजू ने अपने आपको कैसा पीटा था—"मैंने इतनी नफरत कभी किसी से नहीं की, जितनी यह सोच कर खुद से होती है कि मैंने अंशुल को इस तरह मारा। तुम जब आओ तो उसे ज़रूर साथ लाना और अभी उसे मेरी ओर से प्यार करना। उसे बताना, उसका डैडी शर्मिन्दा है।"

दो दिन और बीत गये थे और फिर तीसरे दिन दोपहर को राजू ने मुझे बस-स्टाप पर रोक कर बात करनी चाही थी। उनकी कही अन-सुनी करती मैं बस में चढ़ गयी थी और राजू बाहर ही खड़े रह गये थे। उसी रात साढ़े बारह बजे कॉल-बेल की आवाज़ बजी थी—वही दो बार, एक नपे-तुले अन्दाज़ में। मैंने उठकर दरवाज़ा खोला था, और राजू चुपचाप चोरों की तरह मेरे पीछे-पीछे कमरे तक आये थे। घर में और सब इस समय तक सो चुके थे और सारा घर खमोशी और अन्धेरे में डूबा हुआ था। मैंने कमरे का दरवाज़ा अन्दर से बन्द किया था राजू नीची नजरें किये मसहरी पर बैठ गये थे।

"चलो, तुम ही बड़ी निकलीं।" राजू ने कुछ कहने की कोशिश की थी।—"हम ही आ गये। हमारी गलती थी। हम सौ बार तुम से माफ़ी मांग लेते हैं। माफ़ कर दोगी तो ठीक है, नहीं तो मिटने को भी अब बचा ही क्या है। तुम से कुछ उम्मीद थी, इसलिये बेग़ैरत बनकर भी घुस आये।"

कमरे में खामोशी रही थी। अंशुल भी इस समय गहरी नींद चुका था।

'बोलो ? तुम अगर गालियां दे लोगी, चीख-चिल्ला लोगी तो मैं फिर भी समझ लूंगा कि तुमने माफ़ कर दिया…इस तरह चुप मत रहो।"

दो पल की फिर चुप्पी बंध आयी थी।

"देखो," राजू ने जेब से कागज़ात निकाल कर मुझे दिखाने की कोशिश करते हुए कहा था—"यह दस हज़ार रुपये का ड्राफ्ट है, मेरे किसी पर निकलते थे। कुछ शरीफ लोग ऐसे भी होते हैं कि उसने मुझे दे दिये।"

राजू ने रुक कर अपना गला साफ किया था—"मैं यह कहने आया था कि तुम्हारी मम्मी का जितना भी पैसा निकलता है, हम लोग इसमें से देकर वापस चलें। जो पैसा अपने पास है उससे वहां काम शुरु कर देंगे फिर से ठेके का। हमारे तो खून में ही सीमेंट मिली है ना। कोई छोटे-से काम से शुरू करेंगे, किसी दूसरे के नाम से, और फिर तुम देखना कैसे सब कुछ ठीक हो जायेगा। गलती तो यही की कि जिस काम का तर्जुबा था उसे छोड़कर गलत-सलत कामों में हाथ डाल दिया, तो उसके भी कारण थे। सुबह का भूला…। और यार, बहुत हो गयी…" कहकर राजू ने एक लम्बी सांस ली थी।

मैंने पहली बार ध्यान से देखा—सचमुच राजू थके हुए लग रहे थे। उनका रंग पिछले कुछ दिनों में ही काला पड़ गया था, दाढ़ी बढ़ आई थी, जिसका रंग अब बिल्कुल काला नहीं था, जगह-जगह सफेदी जन्म ले चुकी थी। वह वही पुराना बुशर्ट पहने हुए थे जिसका रंग, ज्यादा धुलने के कारण समझ नहीं आता था।

"बोलो क्या कहती हो ?"

मैं सोचती-सी खड़ी रही थी…शादी की रात…रिज़्वी…नारायण …जीजा जी…अबोर्शन…दवा की दुकान के सामने से गुजरती लड़कियां …जाने कितने बिच्छू एकदम मेरे दिमाग में कुलबुलाये थे—"तुम जाओ राजू," मैंने संतुलित स्वर में कहा था—"मैं अब यहीं रहूंगी।"

"ऐसा ?" थोड़ा चुप रहने के बाद राजू ने एकदम सिर उठाकर मेरी ओर देखा था। यह तुम्हारा फैसला ?"

"फैसला ही समझो।" कह कर मैं अंशुल के पास जाकर बैठ गयी थी।

"ठीक है।" राजू ने मसहरी के नीचे से सूटकेस खींचकर निकाला था और अपने कपड़े अलग कर के एयर-बैग में भरने लगे थे—"अगर संबंध इसी तरह टूटते हैं तो टूट गये। बुरे समय में ऐसा ही होता है। लेकिन लिख लो, पछताओगी। आज अगर मैं अकेला जा रहा हूं तो फिर अकेला ही रहूंगा। तुम समझती हो मैं अब कुछ नहीं कर सकता? थोड़े दिन बाद देखना! लेकिन फिर पछताने से कुछ नहीं होगा। मेरे दरवाजे तुम्हारे लिये बन्द होंगे। सिर्फ तुम दोनों ही हो जिनके ख्याल में मैं अभी तक जिन्दा रहा हूं, जिनके लिए मैंने हर अपमान सहा है। मेरे अकेले के लिए ऐसा क्या चाहिये? और देखना कुछ दिनों बाद यह सब जो आज मुझे हर तरह जलील कर रहे हैं, साले सब हाथ जोड़े खड़े होंगे। उस समय पूछेंगे।"

"जरूर पूछना।" मैंने थके स्वर में कहा था—"और घर जाकर सारे शहर में यहां जो भी हुआ उसका इश्तिहार भी छपवा कर बटवा देना! मैं शिकायत नहीं कर रही—शिकायत वहां होती है जहां कोई समझौता संभव हो। मेरा अब तुम से कोई संबंध नहीं, तुम चले जाओ यहां से, प्लीज...!"

अगली सुबह मैं देर तक सोती रही थी और जब मेरी आंख खुली थी तो अंशुल, पद्मा के साथ स्कूल जा चुका था। मुझे जगा हुआ देखकर ज्योति चाय ले आयी थी—"तुम आज कॉलिज नहीं जाओगी?" उसने मेरे पास बैठते हुए पूछा था—"अरे हां! एक मिनट।" कह कर ज्योति गयी थी और एक लिफाफा लाकर मेरे हाथों में थमा दिया था—"यह कोई दरवाजे में से डाल गया, तुम्हारे नाम है।"

लिफाफा हाथ में लेते ही एक आदत से मैंने उसे फौरन खोलना चाहा था, फिर ऊपर लिखी हैंड-राइटिंग्स देखकर मेरे हाथ आप ही आप रुक गये थे। हैंड-राइटिंग्स राजू की थी। कुछ पल मैं वैसे ही बैठी रह गयी थी। फिर लिफाफा खोलते-खोलते लगा अन्दर राजू ने जो भी कुछ लिख

होगा उसे मैं अच्छी तरह जानती हूं। यही होगा कि मैं वापस जा रहा हूं, मुझे विश्वास है इस बार जल्द ही कुछ हो पायेगा। जो बीत गया उसे भुला दो, मैं तुम्हारा इन्तजार करूंगा, जल्द ही आकर साथ ले जाऊंगा। और रह-रह कर उनकी हर बात की टेक इसी पर टूटी होगी कि थोड़े दिनों में सब ठीक हो जायेगा—बस, थोड़े ही दिनों में।

ज्योति कमरे से जा चुकी थी। थोड़ी देर वैसे ही हाथ में पकड़े रहने के बाद मैंने चिट्ठी बिना पढ़े ही फाड़ कर एक ओर डाल दी और नये दिन के लिये खुद को तैयार करने लगी।